



८१२.८
५५५/५५

पुष्पराज



सम्पत्तिदान-यज्ञ का प्रथमोद्देश्य पुस्तक-संग्रह

भामाशाह

[ऐतिहासिक नाटक]

काश ! हम भामाशाह के इस देवोपम त्याग से शतांश भी शिक्षा ग्रहण कर सकते तो आज भामाशाह के भारत के सन्त विनोबा को भूदान और सम्पत्तिदान के लिये ग्राम-ग्राम की पैदल यात्रा न करनी पड़ती ।

—‘सुधेश’

उदा

‘भामा’

नाटककार :—

धन्यकुमार, जैन ‘सुधेश’

नागौद (वि० प्र०)

प्रथमावृत्ति]

‘जुलाई १९५६’

[मूल्य २)

प्रकाशक :—

जैन पुस्तक भवन

१६१११, हरीसन रोड,

कलकत्ता-७

मुद्रक :—

जवाहिर प्रेस

१६१११, हरीसन रोड,

कलकत्ता-७

अपनी तरफ से

श्री धन्यकुमार जैन 'सुधेश' तरुण लेखक एवं कवि हैं और इनसे साहित्य जगत परिचित होता जा रहा है। इन्होंने 'भामाशाह' नाटक लिखकर जैन साहित्य को जो भेंट दी है उसे हम साभार स्वीकार करते हैं।

हमें यह जानकर विशेष गौरव का अनुभव हो रहा है कि भामाशाह उच्च जैनकुल में उत्पन्न हुये एवं अहिंसा-प्रधान जैन धर्म के अनुयायी रहे। अब जिज्ञासा यह उठती है कि भामाशाह ने एक जैन होते हुए भी विख्यात इल्दीघाटी संग्राम में महाराणा प्रताप को पूर्ण सहयोग देकर शत्रु-सेना का संहार किया और कराया—यह कैसे सम्भव हो सका ?

इस महान प्रश्न का समाधान नाट्यकार ने अपनी गवेषणा और शोध द्वारा स्पष्ट रूप से भामाशाह-ताराचन्द्र संवाद में किया है। कई तथ्यों द्वारा प्रमाणित करते हुए तरुण नाटककार ने बताया कि जैनधर्म की अहिंसा, कायर की अहिंसा नहीं किन्तु शीर की अहिंसा एवं सक्रिय अहिंसा है। उद्देश्य महान हो तो उसको चरितार्थ करनेके हेतु की गई हिंसाको हिंसा नहीं कह सकते। जैनाचार्य सोमदेव की व्याख्या को उद्धृत करते हुये नाट्यकार ने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि सोमदेव ने हिंसा के भय से विचलित एवं विमूढ़ भामाशाह के दुर्बल चित्त को स्थिर बनाया एवं उन्हें युद्ध के लिये प्रबुद्ध किया। भामाशाह ने इतिहास प्रसिद्ध युद्ध किया। समग्र जगत के सम्मुख जैनधर्म की अहिंसा के विषय में भ्रान्त धारणा को उन्मूल करने के लिये यह यथेष्ट प्रमाण है।

जैनजगत भामाशाह जैसी विभूति को पाकर धन्य है। भामाशाहने अपनी उदारता एवं अपरिमित त्याग द्वारा समग्र भारत का मुख उज्ज्वल किया है। 'भामाशाह' नाटक में भामाशाह के साथ महाराणा प्रताप को भी उचित मान्यता एवं प्रमुखता दी गई है—यह नाटककार की समदृष्टि का परिचायक है।

हम श्री 'सुधेश' जी के उज्ज्वल एवं उन्नत भविष्य की कामना करते हुये आशा करते हैं कि साहित्य-जगत में ऐसी अन्य कृतियां प्रदान करने में वे कृपणता न करेंगे।

सम्मति दाताओं के भी हम बड़े आभारी हैं जिन्होंने हमें ग्रन्थ प्रकाशन में प्रोत्साहित किया है।

—प्रकाशक

अभिलाषा

तरुण नाट्यकार श्री धन्यकुमार जैन 'सुधेश' की नवीनतम कृति 'भामाशाह' पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। हिन्दी साहित्यमें ऐसे प्रभावोत्पादक रचना की आवश्यकता बहुत दिनों से अनुभूत हो रही थी। आवश्यकता की पूर्ति क्रमशः होने जा रही है देख कर मुझे अत्यधिक सन्तोष हो रहा है। नाट्यकारने विषय तो अच्छा चुना ही है, साथ ही रचना-भंगी भी सराहनीय है। 'मंथन' शीर्षक अध्यायसे यह प्रमाणित होता है कि 'सुधेश' जी ने शोध-कार्य में अत्यधिक परिश्रम किया है। वे धन्यवादार्ह हैं। उदीयमान शिल्पी की उत्तरोत्तर श्री-वृद्धि की कामना करते हुए यह अभिलाषा करते हैं कि हिन्दी-साहित्य-भंडार में ऐसे ही रत्नों का अधिकाधिक संचय हो। 'सुधेश' जी से ऐसी ही अन्य कृति की प्रतीक्षा है।

—डा० कालिदास नाग

पृष्ठ-क्रम



संदेश				
समर्पण				
धन्यवाद है,				
मंथन				
नाटक के पात्र				
नाटक				
नाटक की कुछ सूक्तियां				
सहायक ग्रन्थों की सूची				



‘भामाशाह’ पर प्राप्त सन्देश

श्री १०५ क्षुल्लक गणेशप्रसादजी वर्णी (प्रसिद्ध आध्यात्मिक जैन सन्त)

मुझे आपके कार्यों से प्रसन्नता है। संसार में वही मनुष्य शांति का पात्र हो सकता है जो त्याग से कार्य करे। काम सर्व करो, उसमें तात्पर्य लौकिक प्रशंसा तक न रहे। जनता आपकी कृति से लाभ उठावे।

कोडरमा,

—गणेश वर्णी

श्री माननीय मिश्रीलाल गंगवाल (मुख्य मंत्री मध्य-भारत)

मुझे यह जानकर प्रसन्नता है कि आप ‘भामाशाह’ नाटक को सम्पूर्ण कर चुके हैं और वह शीघ्र ही प्रकाशित किया जाने वाला है, भामाशाह ने स्वामी भक्त और देश प्रेम का जो अमर उदाहरण प्रस्तुत किया है वह भारतीय इतिहास का एक अत्यन्त उज्ज्वल तथा गौरवपूर्ण पृष्ठ है। आशा है आपके द्वारा लिखे गये नाटक से सर्व साधारण जनता इस महान भारतीय के जीवन तथा कार्यों से परिचित हो सकेगी। मैं आपके इस शुभ प्रयास की सफलता चाहता हूँ।

ग्वालियर,

—मिश्रीलाल गंगवाल

श्री यशपालजी जैन (सुप्रसिद्ध साहित्यकार और जीवन साहित्यके सम्पादक)

यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि आपने 'भामाशाह' नाटक लिखा है। हमारे इतिहास के उज्ज्वल रत्नों में भामाशाह की गणना होती है। उनके विषय में लिखकर निस्सन्देह आपने एक अभिनन्दनीय कार्य किया है। मेरी हार्दिक बधाई। मुझे विश्वास है आपकी सरस एवं प्रभावशाली शैली तथा कार्य विषय की उत्कृष्टता के कारण यह कृति अपने ढंग की एक ही वस्तु होगी।

इन्दौर,

—यशपाल

श्री विद्यानिवास जी मिश्र (सूचना तथा प्रचार पदाधिकारी वि० प्र०)

आपकी नवीन प्रस्तावित रचना का मैं सहर्ष स्वागत करता हूँ और आपकी तरुण प्रतिभा का अंशदान हमारे लिये सदैव अभिनन्दनीय होगा। क्योंकि आपकी साधना, मुझे पूर्ण विश्वास है कि, शुद्ध साधना की भावना से प्रेरित होगी।

रीवा,

—विद्यानिवास मिश्र

श्री चैनसुखदासजी न्यायतीर्थ (प्राचार्य दि० जैन संस्कृत कालेज जयपुर)

यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि आपने 'भामाशाह' नामक नाटक की रचना की है। आपकी लगन और उत्साह के लिये धन्यवाद है।

जयपुर,

—चैनसुखदास

श्री सुमेरुचन्द्र दिवाकर, न्यायतीर्थ शास्त्री (सुप्रसिद्ध साहित्यकार)

भारतीय वीरों के इतिवृत्त में राणा प्रताप का अप्रतिम पराक्रम शौर्य धैर्य त्याग आदि उन्नाभिनी प्रवृत्तियों को कौन मानव भूल सकता है ? उन प्रतापपुंज राणा के गौरव को अत्यन्त संकटसंकुल समय में अपने विश्वातिशायी औदार्य के द्वारा विनीत भावपूर्वक प्रशस्त सहायता देने वाले वीर प्रभु के आराधक भामाशाह की स्मृति भी उसी प्रकार मंगलमयी विभूति है ।

महाराणा तथा त्यागवीर भामा का सम्बन्ध मणि-कांचन योग सदृश मनोहर लगता है ।

सुकवि श्री 'सुधेश' ने महामना भामाशाह पर अपनी भद्र रचना बनायी है, यह प्रसन्नता की बात है ।

आशा है सात्विकता एवं वीरता के प्रेमी इससे पर्याप्त प्रकाश प्राप्त करेंगे । यथार्थ में वर्तमान भरत-खण्ड को ही नहीं, विश्व को भामाशाह सदृश धनकुवेर ही आह्लाद प्रदान कर सकते हैं । मैं सुकवि सुधेश के सत्प्रयत्न की सफलता चाहता हूं ।

सिवनी,

—सुमेरुचन्द्र दिवाकर

श्री माननीय महेन्द्रकुमारजी 'मानव' (समाज-सेवा मंत्री वि० प्र०)

'यह जान कर प्रसन्नता हुई कि आपने 'भामाशाह' शीर्षक ऐतिहासिक नाटक लिखा है । आशा है आपकी कृति विद्वज्जनों के बीच आदर पायेगी ।'

रीवा,

—महेन्द्रकुमार

श्री इन्द्रलाल शास्त्री विद्यालंकार (सम्पादक 'अहिंसा')

भामाशाह नाटक भी 'सुधेश' जी ने लिखा है । ऐसे साहित्य की सदैव आवश्यकता रहती है । भामाशाह एक अतुल दानी और महाराणा प्रताप के दक्षिण हस्त थे । ऐसे महान् पुरुष को चरित्र नायक बना नवीन साहित्य का निर्माण धन्यवादार्ह है ।

जयपुर,

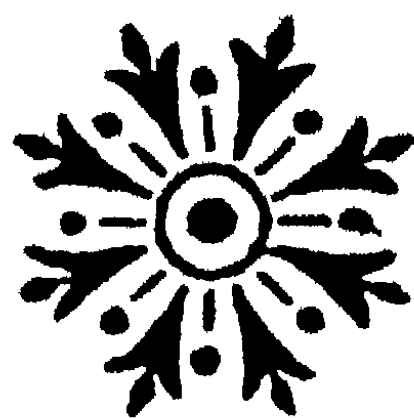
—इन्द्रलाल शास्त्री विद्यालंकार

श्री मुनि कान्तिसागर जी (सुप्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता)

‘आपने अच्छा विषय चुना है ।’

भोपाल,

—मुनि कान्तिसागर



समर्पण

भामाशाहसे नररत्नों की श्रद्धा का केन्द्र बिन्दु स्वतन्त्रता
धन्य है, जिन्होंने स्वतन्त्रता - यज्ञ में सर्वस्व की
आहुति दी, वे भामाशाह से नररत्न भी धन्य हैं,
मैं इस स्वतन्त्रता और ऐसे स्वतन्त्रता-
प्रेमियों को अपना यह ग्रन्थ
समर्पित कर अपने आप को
धन्य मानता हूँ ।

—‘सुदेश’



धन्यवाद है.....’

धन्यवाद है प्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वान श्री-अगरचन्द्र जी नाहटा और सकल शोधक श्री अयोध्या प्रसाद जी गोयलीय को जिनके गवेषणापूर्ण निबन्ध मेरे नाटक को प्रामाणिक बनाने में सहायक सिद्ध हुए ।

धन्यवाद है श्री बरमेन्द्र पुस्तकालय नागौद, महावीर जैन पुस्तकालय जबलपुर और ज्ञान भण्डार उदयपुर को जिनसे मुझे अपेक्षित ग्रन्थ अवलोकनार्थ प्राप्त हुए ।

धन्यवाद है ‘वीर शासन’ पत्र को जिसने मेरा ‘भाभाशाह विषयक जिज्ञासाएँ’ शीर्षक निबन्ध अपने पाठकों तक पहुँचाया और श्री अगरचन्द्र जी नाहटा का निबन्ध प्रकाशित कर मेरी जिज्ञासाओं के समाधान में योगदान दिया ।

धन्यवाद है उन सभी सन्देशदाताओं को जिन्होंने समय पर अपने सन्देश भेजकर मुझे अपने श्रम पर सन्तोष करने का अवसर दिया है ।

धन्यवाद है अपने उन सभी हितैषियों और परिचितों को जिनकी प्रेरणा से मैं अपने मनोरथ को मूर्तिमान् करने में समर्थ हो सका ।

इत्यलम् ।

—धन्यकुमार जैन ‘सुधेश’

मं थ न

आज का भौतिकवादी युग हिंसात्मक उपायों से विश्व में शान्ति की स्थापना करना चाहता है । उसने धारणा बना ली है कि अहिंसा कायरता की जननी है । और अहिंसा के अनुयायी पराधीनता के प्रेमी । अहिंसा का पुजारी भी आवश्यकता पड़ने पर स्वाधीनता संग्राम का प्रमुख सेनानी बन सकता है, यह कथन उसे मात्र कल्पना प्रतिभासित होता है, पर यदि वह क्षण भर के लिये अपनी इस मिथ्या धारणा को भूलकर गम्भीरता से अध्ययन और चिन्तन करे तो उसे ज्ञात हो जाय कि इतिहास का भण्डार, जहां हिंसा के उपासक क्रूर आक्रमणकारियों की नृशंसतापूर्ण कथाओं से सम्पन्न है, वहां उसमें अहिंसा के अनुयायी शान्ति-प्रिय स्वदेश-सेवियों की त्याग-गाथाओं का भी अभाव नहीं । ऐसे अहिंसा-भक्त भारतीय वीरों ने शत्रुबल का विध्वंस करने के लिये कभी हिंसा को अपना शस्त्र नहीं बनाया पर वे स्वदेश-रक्षा के लिये आवश्यकता पड़ने पर अहिंसा की दुहाई देकर अन्तःपुर में भी नहीं बैठे रहे । उन्होंने शत्रु के देश पर अधिकार जमाने के लिये नहीं; अपने देश की स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण रखने के लिये—विधर्मी शत्रु-दल को अपने धर्म में परिवर्तित करने के लिये नहीं, अपने धर्म को सुरक्षित रखने के लिये—और शत्रुदल की सुन्दरियों के साथ दुराचार करने के लिये नहीं; अपनी मां बहिनों के सतीत्व की प्रतिष्ठा रखने के लिये रक्षास्त्र धारण किया । ऐसे ही अहिंसाभक्त भारतीय वीरों में भामाशाह का नाम सर्वप्रथम स्मरणीय है ।

दानवीर भामाशाह ने मेवाड़-उद्धार के हेतु कितना महान् त्याग किया है, यह किसी भी इतिहास-प्रेमी से छिपा नहीं । पर आज ऐसे कितने व्यक्ति हैं जो प्रतापी प्रताप की आभा से प्रभावित हो भामाशाह का भी यथार्थ दर्शन कर सके हों । निस्सन्देह ऐसे व्यक्तियों की संख्या अंगुलियों पर गणनीय है, जो एक इतिहास-प्रेमी देश के लिये लज्जा का विषय है ।

मंथन

इसी लज्जा को आंशिक रूप में दूर करने का प्रयास प्रस्तुत नाट्य-ग्रन्थ में किया गया है ।

मैं न कोई इतिहासवेत्ता हूँ और न कोई शोधक । इतिहास के अध्ययन का सुयोग मुझे मिल न सका और शोध जैसा दुस्साध्य कार्य मेरी अल्प शक्ति से परे रहा है । पर भामाशाह विषयक जनसाधारण की अज्ञानता मुझे चिरकाल से मौन आदेश देती रही है, जिसकी उपेक्षा का साहस मेरी अन्तरात्मा नहीं कर सकी और मुझे इस दुष्कर कार्य में जुटना पड़ा है ।

यद्यपि मुझमें उस योग्यता का सर्वथा अभाव है, जो ऐसे महत्वपूर्ण कार्यों के लिये आवश्यक होती है, पर विद्वज्जनों का चिर मौन ही मुझ अज्ञानी की इस अनधिकार चेष्टा का कारण है । सोचता हूँ, महान् तेजस्वी दिननाथ की कृपा न होने पर लघुमृत्तिका के दीप को ही अपनी क्षीण आभा द्वारा अन्धकार से संग्राम करना पड़ता है । मेरा यह प्रयास भी सूर्य के समान न सही, मृत्तिका के दीप के समान ही भामाशाह विषयक अज्ञानता को दूर कर सकेगा—ऐसा मेरा आत्म-विश्वास है ।

जब भामाशाह पर कुछ लिखने का संकल्प ही कर बैठा, तो उनके विषय में कुछ जानकारी भी अपेक्षित हुई । फल स्वरूप उपलब्ध ग्रंथों के पृष्ठ पलटे । परिचित विद्वज्जनों से पत्र-व्यवहार किया, सभी ने यथासम्भव सहयोग दे मुझे प्रोत्साहित करने की कृपा की । गुरुजनों ने अपनी स्नेहसिक्त वाणी से अशीष दी और मित्रों ने अपने उत्साह-वर्द्धक वाक्यों से प्रेरणा । यह प्रोत्साहन का सम्बल पाकर मेरे साहस को आगे बढ़ने की सूझी । कौतूहलपूर्वक आगे बढ़ने पर देखा कि इतिहास-रूप क्षीर-सागर में भामाशाह-रूप रत्न एक कोने में पड़ा अन्धकूप से बाहर निकलने की प्रतीक्षा कर रहा है । मैंने अपनी प्रतिभा की लघु मथानी से विशाल क्षीरसागर का मन्थन आरम्भ कर दिया । मन्थन करने पर भामाशाह के विषयमें जो भी सार वस्तु उपलब्ध हुई, उसे यहां दे देना अप्रासंगिक न होगा ।

‘भामाशाह’ का जन्म ‘कावड़िया’ संज्ञक ओसवाल जैन कुल में हुआ था । *

* राजपुताने के जैन वीर पृ० ८०

इनके पूर्वजों का वृत्तांत लिखते हुए सेवग जेठ मल ने कहा है—‘भामाशाह का पड़दादा चांदा कावड़िया जो राय की गोत्र ओसवाल दिल्ली का रहने वाला था, उसके बाप-दादे बादशाह की खफगी के कारण लड़ाई में मारे गये थे, उस वक्त वह बच्चा ही था। इसीलिये उसको कावड़ में डाल कर मेवाड़ लाये। इससे उसका और उसकी सन्तान का नाम ‘कावड़िया’ हो गया। चांदा का बेटा तीड़ा और तीड़ा का भारमल्ल हुआ। ये लोग बादशाहों के यहां कोठारी और कामदार थे और उदयपुर में दीवान हो गये थे। दीवान होने के पहिले भी इन लोगों के पास बहुत धन था। इसीसे ये शाह कहलाते थे।’^x

उपर्युक्त उद्धरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि भामाशाह के पूर्वज उच्च-कुलीन, राज्य-प्रतिष्ठित और धनीमानी रहे हैं। पर भामाशाह के समय से ही उनके वंश की प्रतिष्ठा और सम्पत्तिशीलता अभ्युन्नति की चरम सीमा तक पहुंच सकी थी। इसका कारण भामाशाह का जन्मजात महापुरुष होना ही कहा जा सकता है। वस्तुतः मेवाड़-उद्धार के लिये महाराणा प्रतापसिंह को अतुल धन-राशि का दान उनके महापुरुष कहलाने का कारण नहीं रहा, पर उनका महापुरुषत्व ही उनके इस अनुपमेय दान का कारण रहा है। मेरा यह मत केवल भावुक कवि-हृदय की कल्पनामात्र नहीं है, सत्य है। उनके जन्म की एक घटना भी मेरे इस कथन की अकाट्य पुष्टि करती है। जिसका यहाँ उल्लेख कर देना अनावश्यक न होगा।

बीकानेर के यशस्वी ऐतिहासिक विद्वान् श्री अगरचन्द्र जी नोहटा ने ‘वीर शासन’ में ‘भामाशाह विषयक जिज्ञासाओं का समाधान’ शीर्षक जो लेखमाला प्रकाशित करायी थी, उसमें आपने इस विषय की पुष्टि में दो पट्टावलियाँ भी उद्धृत की हैं। ये पट्टावलियाँ पहली शती में रची गयी हैं। अतः भामाशाह के विषय में प्रचलित उस समय तक की अनुश्रुतियों का बोध इनसे भलीभाँति हो जाता है। इन पट्टावलियों में भामाशाह के अष्टादश कोटि के स्वामी होने का कारण उन्हें दक्षिणावर्त शंख का प्राप्त होना बतलाया गया है। इन पट्टावलियों

^x वीर शासन १६ दिसम्बर १९५२ पृ० ७

मंथन

में से एक लोकभाषा में है और दूसरी संस्कृत में । लोकभाषा की पट्टावली का आधार संस्कृत भाषा की पट्टावली है, इसके अतिरिक्त संस्कृत भाषा की पट्टावली में लोकभाषा की पट्टावली की अपेक्षा वर्णन विस्तार से भी है । अतः उसे ही यहाँ उद्धृत किया जा रहा है ।

॥ ॐ शिव ॥

॥ सं० १६१६ ॥ चित्रकूट महादुर्ग कावड़ियान्दयो भारमल्लो धनी तपा-
गणीयोऽभूत् । तेन श्री देवागर सूरीणामभिधानं युद्ध क्रियाधारकत्वं चाश्रुतं तदादित
इव तद्गुणरंजित चेतस्कोऽवदत् ।

श्लोकः —

धन्यो देवागर स्वामी, प्रदीपो जैन शासन ।

एसा एव गुरुर्भास्ति धन्योऽहं तन्निदेशकृत ॥११॥

गा० ९

इति भावनया शुद्धात्मा भारमल्लः तास्मिन्नवसरे तत्रेत्या भोमा नामा नाहटोऽस्ति
तद्गृहेषु पुण्ययोगादक्षिणावर्त्तः शंखः प्रादुर्भूत तत्सान्निध्यात् गृहेऽष्टादश कोट्यो
धनस्य प्रकटी भवति ॥ अथ षड्मामी प्रान्ते शंखदेवेन भोमाकस्य स्वप्ने दर्शनं
दत्तं निवेदितं च ॥ भोमो मासाह त्वं श्रुणु । तव भार्याया उदरे पुत्रीत्वेन कश्चिज्जीवः
समेतोऽस्ति कावड़िया भारमल्ल भार्योदरे सुकृतीकश्चन् जीवः सुतो अवतीर्णोऽस्ति ।
ततस्तत्पुण्यप्रेरितो भारमल्लकावड़ियागृहे गमिष्यामि इत्याकर्ण्य भोमाकोऽवदत् एवं
मा याहि यथाहं करोमि तथा गच्छे त्युक्ते ते नामेति भणितम् ॥ अथार्हमुखेजाते
सर्वस्वजनसहितः शंख स्वनजागरुकी कृतानेक लोकः स्वर्णस्थाले दक्षिणावर्त्त शंखं
निधायातिमहार्घ्यवस्त्रेणाच्छाद्य भोमाको भारमल्लभवनाभि मुखमागतास्तमायास्तमा-
लोक्य सानंदं साभारं भारमल्लोऽभिमुखं मिलितः पृष्ठं च किमागमन प्रयोजनं ।
प्रोच्यतामित्युक्तो भोमाकोऽवदत् कर्णे भो ! समयसम्बन्धिन् मम पुत्री तव च पुत्रो
भविष्यतितयो सम्बन्ध कर्तुं श्रीफलस्थाने इदमद्भुत महात्म्यं शंखंददामि इत्यनिन्तय्य
समुत्पन्न परमाभोदो बहुतदान मानपूर्वकमगृहीतं भारमल्लः गृहकोष्ठकान्तः समभ्यर्च्य

सम्यक् चन्दनचतुष्किकोपरि संस्थाप्य संस्मृतो देवस्तेनाष्टदशकोटि धनं तत्र प्रकटितं कृतं ।”^x

उक्त पट्टावली की इन पंक्तियों से यह स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जाता है कि भोमा नाहटा के यहाँ दक्षिणावर्त्त शंख रहने से १८ कोटि धनराशि प्रकट हुई थी, पर अपनी भावी पुत्री का विवाह सम्बन्ध भारमल्ल कावड़िया के पुत्र भामाशाह के साथ करने के निमित्त श्रीफल के स्थान में दक्षिणावर्त्त शंख भारमल्ल कावड़िया को दे देने से उसके यहाँ भी १८ कोटि धनराशि प्रकट हो गयी ।

निस्सन्देह यह अनुश्रुति भामाशाह को जन्मजात महापुरुष सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है ।

मेवाड़ के अमूल्य ऐतिहासिक ग्रन्थ ‘वीर विनोद’ में पृष्ठ २५१ पर भामाशाह का जन्मकाल ‘सं० १६०४ आषाढ़ शुक्ला १० (हि० १५४ ता० जमादियुल अब्बल ई० १५४७ ता० २८ जून सोमवार)’ बतलाया गया है ।[‡] इनका यह जन्म भारमल्ल के लिये शुभ सूचक हुआ । ठीक ही है, योग्य संतान की प्राप्ति पिता के अभ्युदय का निमित्त बनती है । जब ये ऋः वर्ष के थे, तभी ‘वि० १६१० (हि० १६० ई० १५५३)’ में महाराणा उदयसिंह ने भामाशाह के बाप भारमल्ल कावड़िया को अलवर से बुला कर एक लाख का पट्टा बख्शा था ।⁺

यहीं से भामाशाह के वंश की समुन्नति प्रारम्भ होती है । मेवाड़ के महाराणा ने भारमल्ल को केवल १ लाख का पट्टा ही नहीं बख्शा था वरन् ‘रणथम्भौर’ का किलेदार भी नियुक्त किया था । पीछे से जब हाड़ा सूरज वृन्द लाला वहाँ का किलेदार नियुक्त हुआ, उस समय भी बहुत सा काम भारमल्ल के ही हाथ में था ।[†]

भारमल्ल अपने जीवन के पूर्व भाग में तपागच्छ के अनुयायी रहे हैं, पर सं० १६१६ में देवागर से प्रभावित हो लुंका बने । इस कथन की पुष्टि पूर्व उल्लिखित पट्टावली के निम्नांश से होती है ।

× वीर शासन १ जनवरी १६५३ पृष्ठ ७ ।

‡ राजपूताने के जैन वीर पृष्ठ ९६

+ वीर विनोद पृष्ठ ६८ । † राजपूताने के जैन वीर पृ० ८०

मंथन

एकदिन वनान्तः सृत्चैमण्डपाधी धर्मध्याने निदधन् साधु गुणग्रामाभिरामाः श्री देवानगरस्वामी शुद्धतपोधनो भारमल्लेन दृष्टो विधिवद् वन्दितश्च शुद्धधर्मोपदेशा-
मृत पीतं श्रवणाभ्याम् । अति प्रसन्नेन भारमल्लेनाविभृष्टं महोमहान् भाग्योदयो मे
प्रकटिता यहीदृग्गुणाः गुरवो दृष्टा सर्वेर्था मे सेत्स्यन्ति तदा भारमल्लोऽन्ये बहवो
नागोरीलुंका गणीयाः श्रावकाः जाताः ।†

इन पंक्तियों से भारमल्ल का लुंकामतानुयायी बनना प्रमाणित होता है, साथ
ही यह भी ज्ञात होता है कि राजकीय कार्यों में व्यस्त रहते हुए भी भारमल्ल के
जीवन में धर्म का एक विशिष्ट स्थान रहा है ।

जब महाराणा उदयसिंह वीरा वेश्या के प्रेमजाल में उलझ अपने कर्तव्य को
सर्वथा भूल बैठे और अकबर की सेना में सं० १६२४ में महाराणा की असावधानी
से लाभ उठा कर चित्तौड़ के दुर्ग पर आक्रमण कर दिया, तो महाराणा को चित्तौड़
त्याग कर भाग जानेके सिवा अन्य कोई आत्मरक्षा का उपाय न सूझा । कोयर
उदयसिंह ने दुर्ग से भगकर गिल्होट नामक स्थान में जा अपने प्राणों की रक्षा
की और एक नवीन नगर बसाया, जिसका नाम उदयपुर रखा गया । जिस समय
इस नवीन नगर की नवीन व्यवस्था प्रारम्भ हुई, तो महाराणा ने भारमल्ल को
अपने प्रधान मंत्री के पद पर प्रतिष्ठित किया; जो मंत्री पद उनकी चार पीढ़ियों
तक के लिये पैतृक अधिकार बना ।

महाराणा उदयसिंह के उपरान्त जब महाराणा प्रताप सिंह चित्तौड़ के सिंहा-
सन पर आरुढ़ हुये तब उन्होंने भारमल्ल के पुत्र भामाशाह को अपना प्रधान मंत्री
बनाया । 'यह (भामाशाह) महाराणा प्रताप सिंह के शुरू समय से महाराणा
अमरसिंह के २॥ तथा तीन वर्ष तक प्रधान रहा ।'‡

जिस समय शोलापुर विजय कर लौटते हुये मानसिंह उदयपुर आये और
महाराणा प्रतापसिंह के अतिथि बने ! उस समय उनका आतिथ्य महाराणा
प्रतापसिंह ने स्वयं न कर इसकी व्यवस्था का भार अपने प्रधान मन्त्री भामाशाह

† वीर शासन १ जनवरी १९५३ पृष्ठ ७

‡ वीर विनोद पृ० २५१

को ही सौंपा था, भोजनके समय भी महाराणा स्वयं उपस्थित नहीं हुये थे और युवराज अमरसिंह को ही भेजा था। अपने प्रति महाराणा का यह उपेक्षा भाव मानसिंह को घोर अपमान प्रतीत हुआ। वे निराहार ही उदयपुर से दिल्ली लौट गये। इस अपमान का आघात उनके हृदय पर इतना तीव्र हुआ कि वे अकबर की विशाल वाहिनी लेकर मेवाड़ को शमसान बनाने के लिये शीघ्र ही चल पड़े। फल स्वरूप संसार-प्रसिद्ध हल्दीघाटी का महासमर हुआ। मेवाड़के समस्त वीरों ने इस समर में योगदान दिया। 'वह (भामाशाह) भी प्रसिद्ध हल्दीघाटी की लड़ाई में कुँवर मानसिंह की सेना से लड़ा था।'+ यह उल्लेख प्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वान श्री ओझाजी ने अपने 'उदयपुर राज्यका इतिहास' के अन्तमें किया है। भामाशाह की वीरता और रणचातुरी की पुष्टि करते हुये पं० भाबरमल जी शर्मा (सम्पादक-दैनिक हिन्दू संसार) ने लिखा है—'इन घावों में भी भामाशाह की वीरता के हाथ देखने का महाराणा को खूब अवसर मिला और उससे वे बड़े प्रसन्न हुये।':

भामाशाह को लघु भ्राता ताराचन्द्र भी महाराणा की सेनामें भर्ती हुआ था।+ इसने भी हल्दीघाटी के युद्ध में भाग लिया और मेवाड़-रक्षा के लिये प्राणों को हथेली पर रख यवन सेना से संग्राम किया। हल्दीघाटी के प्रथम तथा द्वितीय युद्ध में महाराणा की सम्पूर्ण धन जन शक्ति नष्ट हो गयी। उनके दिन अत्यन्त संकट में व्यतीत होने लगे, कहीं से सहायता की आशा न रह गयी। ऐसी विकट स्थिति में उन्हें यवनो का सामना करने के लिये धन की आवश्यकता हुई। अतएव 'महाराणा ने चावण्ड में रहते समय भामाशाह को मालवे पर चढ़ाई करने के लिये भेजा।X 'महाराणा का प्रधान भामाशाह कुम्भलमेर की रअध्यत को

+ श्री० नाहटा जी का निबंध 'भामाशाह का घराना।

‡ राजपूताने के जैन वीर पृ० ९३

† वीरशासन १ दिसम्बर १९५२ पृ० ७।

X नाहटा जी का निबन्ध 'भामाशाह का घराना।'

मंथन

लेकर मालवे में रामपुरे की तरफ चला गया। जहाँके राव दुर्गा ने उसको साथियों समेत बड़ी हिफाजत से रक्खा। यहाँ शाह बाज खाँ ने गोगूँदा वा उदयपुर में शाही फौज के थाने बिठा दिये। इसी सन् या संवत् (१६३५), में भामाशाह व उसका भाई २५ लाख रुपये और २०००० अशफियाँ लेकर चूलिया ग्राम में महाराणा प्रतापसिंह के पास पहुँचा और रुपये व अशफियाँ नजर कीं। इस अर्से में (भामाशाहके न रहने पर) रोमा सहाणी प्रधानका कार्य करता था। उस वक्तके किसी शायरने मारवाड़ी जवान में एक दोहा कहा था जो यहाँ लिखा जाता है :—

भामो परधानो करे, रामो कीधो रह ।

धरची बाहर करणुँ, मिलियो आय मरद ॥

महाराणा प्रतापसिंह ने भामाशाह की बहुत खातिर की और उसके व अपने साथी समेत दीवेर के शाही थाने पर हमला किया।^{१*} इस हमले का उल्लेख करते हुए श्री ओम्नाजी ने भी 'उदयपुर राज्य का इतिहास' जिल्द पृ० ४३१ पर लिखा है—“महाराणा भामाशाह की बड़ी खातिर करता था और वह दीवेर शाही थाने पर हमला करने के समय भी राजपूतों के साथ था।”⁺

‘महाराणा ने भामाशाह के भाई ताराचन्द्र को मालवे में रामपुरे की तरफ भेजा था, जिसको शाहबाज खाँ ने जा घेरा और ताराचन्द्र वहाँ से लड़ाई करता हुआ बसी के नजदीक पहुँचा, जहाँ जख्मी हो जाने के सबब घोड़े से गिरा। लेकिन बसीका राव देवड़ा साईदास उस जख्मी को जो बेहोश हो गया था, उठाकर अपने किले में ले आया। शाहबाज खाँ तो दूसरी तरफ रवाना हुआ और यह छल महाराणा प्रतापसिंह ने सुनकर चावण्ड से कूच किया सो दशौर वगैरह में मालवे के शाही थानों को तहस नहस करते और दण्ड लेते हुये चावण्डमें आ पहुँचे। ‡’

* वीर विनोद पृ० १५७-१५८

+ राजपूताने के जैन वीर पृ० ९३

‡ वीर विनोद पृ० १५८

उक्त पंक्तियों से ज्ञात होता है कि महाराणा प्रतापसिंह भी भामाशाह और उनके भाई ताराचन्द्र की चिन्ता रखते थे, अन्यथा कौन नरेश अपने एक पदाधिकारी पर संकट सुनकर स्वयं उसकी रक्षा करने के लिये जा सकता है ? वस्तुतः मेवाड़के प्रति भामाशाह और उनके परिवारकी स्वामिभक्ति ही महाराणा की इस दुर्लभ कृपा का कारण रही है ।

भामाशाहके जीवन का प्रत्येक अंश स्फटिक मणि के समान निर्मल रहा है । उसमें कहीं भी कालिमा की क्षीण रेखा तक नहीं आ पायी, वे सिद्धान्त-रक्षा को सदैव इन्द्र सम्पदा से भी मूल्यवान मानते रहे । उनका मन अपने कर्तव्यों पर मेरु पर्वत के समान अटल रहा, प्रलोभनों की आँधियाँ कभी उसे अणु भर भी विचलित नहीं कर सकीं । अपने इस कथन की पुष्टि में मैं इतिहास की एक घटना उद्धृत कर रहा हूँ :—

‘बादशाहने मिर्जा खाँ को फौज देकर मालवे की तरफ भेजा जिससे भामाशाह जाकर मिला । मिर्जा खाँ ने महाराणाको बादशाह की खिदमतमें ले जाना चाहा, लेकिन भामाशाहने मंजूर न किया । ॥’

इस उल्लेखसे भामाशाहकी कर्तव्य-प्रियता का प्रमाण सहज ही मिल जाता है, प्रत्येक इतिहास-प्रेमी को यह ज्ञात है कि यवन सम्राट् अकबर महाराणा प्रताप सिंह को अपने अधीन करने के लिये अत्यंत उत्कण्ठित रहा है । हम इस उत्कण्ठा को यदि उसके सम्पूर्ण जीवन की महत्तम आकाँक्षा कहें, तो भी कोई अत्युक्ति न होगी । अपनी इसी मनोकामना को मूर्तिमान करने के लिये उसने कितने धन-जन का विनाश किया, इस बात की घोषणा इतिहास के पृष्ठ तारस्वर से कर रहे हैं । महाराणा प्रतापसिंह को अपनी राज-सभा में लाने के लिये वह सर्वस्व होमने को भी तत्पर रहा, अपने जीवन का अधिकांश समय भी इसी समस्या का समाधान खोजने में व्यय किया । एक बार नहीं, अनेक बार प्रतापसिंह को अपने जाल में फँसाने के लिये कूटनीति के चक्रव्यूह रचे । पर वीर अभिमन्यु के समान

मंथन

महाराणा ने प्रत्येक चक्रव्यूहका भेदन सफलतापूर्वक किया। उसके आदेश से मिर्जा खां का भामाशाह से मिलना और महाराणा को अकबर की राजसभा में ले चलने का आग्रह करना एक ऐसा ही निष्फल चक्रव्यूह था। यदि इस अवसर पर भामाशाह चाहते तो किसी प्रकार अकबर की आकांक्षा की पूर्ति का निमित्त बन कर उससे यथेष्ट धन और विशेष मान प्राप्त कर सकते थे। पर धन्य हैं वे भामाशाह, जिन्होंने स्वामिभक्ति की मान-प्रतिष्ठा रखने के लिये यवन-नरेश द्वारा मिलनेवाली मान-प्रतिष्ठा को ठुकरा दिया। वास्तव में अकबर जैसे दाता के किमिच्छिक दान की उपेक्षा कर देना उनके ही वश का था। वणिक् जाति को लोभी मानने की चिरधारणा को उन्होंने अपने निलोभ से मिथ्या प्रमाणित कर दिया। इसी कारण उनका निलोभ महाराणा की कृपा से पाणिग्रहण करने में सफल हुआ।

भामाशाह की कार्य-पटुता से महाराणा इतने प्रसन्न थे कि वे उन्हें अपना विशेष अंग मानते थे। मेवाड़ के तत्कालीन अनेक कार्यों में भामाशाह का नाम जुड़ा हुआ पाया जाता है। सरस्वती भाग १८ संख्या २ में श्री देवी प्रसाद जी मुंशी का 'महाराणा प्रताप सिंह का ताम्रपत्र' शीर्षक एक लेख प्रकाशित हुआ था। उस लेख में जिस ताम्रपत्र को उल्लेख किया गया है, वह सं० १६३९ का है और उसमें चारण कान्हा को महाराणा प्रताप सिंह द्वारा मृगेश्वर गांव दिये जाने का उल्लेख है। इसके अन्त में भामाशाह का नाम भी आता है, अतः उसकी नकल नीचे लिखी जाती है :—

‘महारजाधिराज महाराणा श्री प्रतापसिंह जी आदेशात् चारण कान्हा हे गाँव मिरघेसर दत्त पया कीधो, आघाट घै दीघो, सं० १६३६ वर्षे फागुन सुदी ५ हुए श्री मुखवीदमान शाह भामाशाह ।’ *

उक्त ताम्रपत्र के लेख से यह भी सिद्ध हो जाना है कि इस ताम्रपत्र के बनने के समय भामाशाह उपस्थित थे।

यों महाराणा प्रताप सिंह के अभिन्न अंग बनकर भामाशाह ने सदा ही अपना यथेष्ट योगदान दिया। जब यवनों के अविरल आक्रमणों से सभी दुर्गों

* वीर शासन १६ दिसम्बर १९५२ ई० पृ० ७।

पर अकबर का अधिकार हो गया, अखिल मेवाड़ में महाराणा को सुरक्षित रहने के लिये एक भी स्थान न रह गया ; दिन में एक बार कन्द मूल का भोजन भी दुर्लभ हो गया, रात्रि में निश्चिन्तता से क्षण भर लेटने के लिये पर्वतों की गुफाएँ भी अप्राप्य हो गयीं, तब उन्होंने शेष जीवन शान्ति से व्यतीत करने के लिये मेवाड़ त्याग अन्यत्र जाने का संकल्प किया । पर भामाशाह से अपने स्वामी महाराणा का यह प्रयाण न देखा गया । उन्होंने अपनी समस्त सम्पत्ति मेवाड़-उद्धार के लिये महाराणा के चरणों में समर्पित कर दी, इस घटना का उल्लेख टाड राजस्थान में इस प्रकार है—

‘राणाजी को अपनी जन्मभूमि से विदा नहीं लेनी पड़ी । अरावली के शिखर से उतर कर वह जन्म भूमि की सीमा पर आये थे कि उनके परम विश्वासपात्र मन्त्री ने असीम धनराशि लेकर राणा जी को समर्पित कर दी । अकेले भामाशाह ने ही इस विपुल धनराशि को उपाजित नहीं किया था, वरन इनके पूर्व पुरुषों ने जो कि बहुत दिनों से मेवाड़ के मन्त्री होते आये थे, उस धन को इकट्ठा किया था । वह धन इतना था कि जिसकी सहायता से बारह वर्ष तक २५,००० पच्चीस हजार सेना का भरण पोषण हो सके । इस महान उपकार को करने के कारण ही भामाशाह मेवाड़ के उद्धारकर्ता कहलाये ।’ *

भामाशाह के इस अपूर्व त्याग के सम्बन्ध में हिन्दी के यशस्वी कवि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने निम्न उद्गार प्रकट किये हैं :—

‘जा धन हित नारि तजै पति,
पूत तजै पितु शीलहि सोई ।
भाई सों भाई लरै रिपु से पुनि,
मित्रता मित्र तजै दुख जोई ॥
ता धन को बनिवाँ हूँ गिन्यो न,
दियो दुख देश के आरत होई ।

* टाड राजस्थान जिल्द १ पृ० ४०२-४०३ ।

मंथन

स्वारथ आर्य तुम्हारोई है,
तुमरे सम और न या जग कोई ॥ *

इस प्रकार एक नहीं, अनेक कवियों ने भामाशाह के उक्त त्याग की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। वस्तुतः भामाशाह का त्याग इतना गुरु है कि उसकी प्रशंसा में कहे गये उद्गार पर्याप्त नहीं कहे जा सकते। जिस सम्पत्ति के लिये औरंगजेब ने अपने जनक को भी बन्दी बनाया, सहोदर की जीवन-लीला हँसते हँसते समाप्त कर दी; जिस सम्पत्ति के लिये बनवीर ने अपने भतीजे (मेवाड़ के उत्तराधिकारी) बालक उदयसिंह की हत्या के लिये अमानवीय प्रयत्न किये; जिस सम्पत्ति के लिये स्वार्थी राजाओं ने अपने पिता और भ्राताओं को भी छलपूर्वक यमलोक भेजा; जिस सम्पत्ति के लिये लोभियों ने अपना धर्म, कुल, गौरव और स्वदेश भी विदेशियों के हाथ बँच दिया, वही सम्पत्ति भामाशाह ने मेवाड़-उद्धार के लिये सहर्ष मेवाड़-केसरी महाराणा प्रतापसिंह को समर्पित कर दी। काश ! हम भामाशाह के देवोपम त्याग से शतांश भी शिक्षा ग्रहण कर सकते, तो आज भामाशाह के भारत के सन्त विनोबा भावे को भूदान और सम्पत्ति दान के लिये ग्राम ग्राम की पैदल यात्रा न करनी पड़ती।

भामाशाह के इस आशातीत त्याग का महाराणा और तत्कालीन जनता पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि शताब्दियाँ बीत जाने पर भी उनके नाम पर उनके वंशज सम्मानित हो रहे हैं। इस विषय को स्पष्ट करने के लिये श्री अयोध्या प्रसाद जी गोयलीय की प्रसिद्ध पुस्तक 'राजपूताने के जैन वीर' के पृष्ठ ९४-९६ से एक विस्तृत अंश उद्धृत किया जा रहा है, जो इस प्रकार है—

मेवाड़ की राजधानी उदयपुर में भामाशाह के वंशज को पंच पंचायत और अन्य विशेष उपलक्ष्यों में सर्वप्रथम गौरव दिया जाता है। समय के उलटफेर और कालचक्र की महिमा से भामाशाह के वंशज आज मेवाड़ के दीवान पद^x पर नहीं

* राजपूताने के जैन वीर पृ० ९१

^x भामाशाह के घराने में चार पीढ़ियों तक दीवान पद रहा। राणा उदय-

हैं और न धन का बल ही उनके पास रह गया है। इसलिये धन की पूजा के इस दुर्घट समय में उनकी प्रधानता धन-शक्ति-सम्पन्न उसकी जाति विरादरी में अन्य लोगों को अखरती है। किन्तु उनके पुण्यश्लोक पूर्वज भामाशाह के नाम का गौरव ही ढाल बन कर उनकी रक्षा कर रहा है। भामाशाह के वंशजों की परम्परागत प्रतिष्ठा की रक्षा के लिये सं० १९१२ में तत्सामयिक उदयपुराधीश महाराणा स्वरूपसिंह को एक आज्ञापत्र निकलवाना पड़ा था। जिसकी नकल इस प्रकार है—

“श्री रामो जयति”

श्री गणेश जी प्रसादात् श्री एकलिंग जी प्रसादात्

भाले का निशान

[सही]

स्वस्ति श्री उदयपुर शुभस्थाने महाराजाधिराज महाराणा जी श्री स्वरूप सिंह जी आदेशात् कावड़या जेचन्द कुनड़ो वीरचन्दकस्य अप्रं थारावड़ा वामा भामो कावड़यो ई राजम्हे साम ध्रमा सुकाम चाकरी करी जीकी मरजाद ठेठ सूप्पा है महाजन की जातम्हे बावनी त्या चौका को जीमण व सींग पूजा होवे पहले तलक थारे होतो होसो अगला नगर सेठ वेणीदास करसो करयो अर वेदर्यापित तलक थारे नहीं करवा दीदो अवारु थारी सालसी दीखी सो नगेकर सेठ पेमचन्द ने हुकम

सिंह का प्रधान भारमल्ल, प्रतापसिंह का प्रधान मंत्री भामाशाह और राणा अमर-सिंह के समय ३ वर्ष तक भामाशाह ही प्रधान बना रहो। विक्रम सं० १६५६ माघ सुदी ग्यारस ई० सन् १६०० ता० १६ जनवरी को उसका देहान्त हुआ। उसके पीछे महाराणा ने उसके पुत्र जीवाशाह को अपना प्रधान बनाया, उसका देहान्त हो जाने पर महाराणा कर्णसिंह ने उसके पुत्र अक्षवराज को मंत्री नियत किया। इस प्रकार चार पीढ़ियों में स्वामि-भक्त भामाशाह के प्रधान पद रहा।

(उदयपुर का इतिहास)

मंथन

दी सो वी जी आजकरा अर न्यात म्हे हकसर मालम हुई सो अब तलक माफक दसतुर के थे थारो कराव्या जाजो आगासु थारा बंस को होवेगा जीके तिलक हुवा जावेगा । पंचानेबी हुकम कर दीव्यो है सो वैली तलक थारे होवेगा । प्रवानगी म्हेना सेर सींघ संवत् १९१२ जेठ सुद १५ बुधे”

—हिन्दू संसार दीपोवली अंक

कार्तिक कृ ३ सं० १९८२ वि०

इसका अभिप्राय यही है कि भामाशाह के मुख्य वंशधर की यह प्रतिष्ठा चली आती रही कि जब महाजनों में समस्त जाति समुदाय का भोजन आदि होता था, तब सबसे प्रथम उसके तिलक किया जाता था । परन्तु पीछे से महाजनों ने उसके वंशवालों को तिलक करना बन्द कर दिया, तब महाराणा स्वरूप सिंह ने उसके कुल की अच्छी सेवा का स्मरण कर इस विषय की जाँच कराई और आज्ञा दी कि महाजनों की जाति में बावनी (सारी जाति का भोजन) तथा चौके का भोजन व सिंहपूजा में पहिले के अनुसार तिलक भामाशाह के मुख्य वंशधर को ही किया जाये—इस विषय का एक परवाना वि० सं० १९१२ ज्येष्ठ सुदी १५ को जयचन्द कुल अणो वीरचन्द कावड़या के नामका दिया, तबसे भामाशाह के मुख्य वंशधर के तिलक होने लगा ।”

“फिर महाजनों ने महाराणा की उक्त आज्ञा का पालन नहीं किया । जिससे वर्तमान महाराणा साहेब के समय वि० सं० १९५२ कार्तिक सुदी १२ को मुकदमा होकर उसके तिलक किये जाने की आज्ञा दी गयी ।” X

मेवाड़ के महाराणाओं द्वारा दिया गया भामाशाह के वंशजों का यह सम्मान भामाशाह के परोपकार के प्रति कृतज्ञता का सूचक है ।

भामाशाह के ही समान उनके अनुज ताराचन्द्र भी यशस्वी और लब्धप्रतिष्ठ व्यक्ति थे । उन्हें संगीत, साहित्य आदि ललित कलाओं से अतीव प्रेम था । वे इन कलाओं की सूक्ष्मतम विशेष जानकारी भी रखते थे तथा अन्य कलाकारों को भी

X उदयपुर का इतिहास जिल्द १ पृष्ठ ४७५-४७६ ।

प्रोत्साहन देते रहते थे । उन्होंने श्वेताम्बर पुनमिया गच्छ के वाचक श्री हेमरत्नजी सं० १६४५ सादड़ी में 'गोराबादल कथा पद्मिनी चौपाई' नामक ग्रन्थ की रचना करायी थी, जैसा कि उक्त ग्रंथ की प्रशस्ति में कवि ने स्वयं लिखा है:—

संवत सोलहसई पणयाल ।
 सावण सुदि पंचम सुविशाल
 पुहवी पीठ धण पर गड़ी,
 सबलपुरी सोहे सादड़ी ।
 प्रथवी परगट दांड प्रताप,
 दिन दिन चढ़तै तेज विख्यात,
 तस मंत्री सद्बुद्धि निधान
 कावेड़या कुल तिलक समान ।
 सामंधर मधुर भामाशाह,
 वैरी वंस विधंसण राह,
 तस लघु भाई ताराचन्द
 अबनि जाणि अवतारियो इन्द
 ध्रू जिमि अविचल पालैधरा,
 सत्रु सहु कीधा पाधरा ।
 तस आदेस लहि सद्भाव,
 बादल बात रची सद्भाव ।
 सुण्यो तिसो भाख्यो परबन्ध
 सांम धरमवीर रस संबंध ।” +

उपर्युक्त उद्धरण से ताराचन्द्र का सादड़ी का शासक होना और शत्रुओं पर विजय प्राप्त करना सिद्ध हो जाता है । साथ ही यह भी प्रमाणित होता है कि उसके यहाँ श्रेष्ठ कवियों को आश्रय मिलता रहता था ।

मंथन

ताराचन्द्र के समान भामाशाह भी साहित्यप्रेमी थे, वे भी कवियों का समादर किया करते थे। उस समय का यशस्वी कवि विदुर भामाशाह के आश्रित था। उसने अपने आश्रयदाता के नाम पर ही सं० १६४६ आश्विन शु० १० को 'भामा बावनी' नामक एक रचना रची। यह अकारादि वर्णों से प्रारम्भ होने वाले औपदेशिक पद्यों के रूप में है, इसके प्रारम्भिक ५२ पद्य तो कवि विदुर ने भामाशाह के मुख से ही कहलाये हैं। उन पद्यों के अन्त में 'भामाशाह इस प्रकार कहता है'—ऐसा निर्देश किया गया है। इस रचना के प्रारम्भ में भामाशाह के गुरु एवं वंश का परिचय निम्नोक्त दो पद्यों में दिया गया है:—

‘विदमल गच्छ नागोरि, ज्ञानी देपोल जिसागुर ।
दया धर्म दारविये देव चौबीस तीर्थकर ॥
मदियावटी पृथ्वीराज सांड भारमल्ल सुणीजै ।
जसवंत बांधव जोड़ करण कलियाण कहीजै ॥
ताराचन्द्र लखमण रामजिण थितथोमड़ जोड़ी थयो ।
कुल तिलक अभंग कावेड़िया भामो उजलावण भयो ॥
मूलमंड भारमल्ल — साख कावेड़िया सोहई ।
पुत्र पौत्र परिवार भडरि भंजयदति मोहई ॥
लखमी नित लख गुणी फालंत्या सूरज फुलहल ।
विस्तरियो जस वास कीर कवि करई कुतूहल ॥
विस्तार घणऊ तिहु खण्ड विचई जगि आलंवणि एह जण ।
कलिकाल इयई पीथल कुलई भामौ कल्पतुरु भवण ॥ X

इन पद्यों से भामाशाह के पूर्वज पृथ्वीराज या पीथल का भी पता चलता है। इसी प्रकार भारमल्ल के भ्राता जसवन्त का उल्लेख भी इसमें मिला है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भामाशाह और ताराचन्द्र राजनैतिक क्षेत्र में कार्य करते हुये भी धर्म और साहित्य के क्षेत्र से बहिर्भूत नहीं थे। इन दोनों की

वीरता, स्वामिभक्ति और सहृदयता से महाराणा प्रतापसिंह अनेक बार प्रभावित हुये थे। उन्होंने भामाशाह के परिवार के प्रति सदैव प्रेमपूर्ण व्यवहार व्यक्त किया, पर उनके अयोग्य पुत्र अमरसिंह में पिता के सद्गुणों की मात्रा उतनी नहीं थी। मेवाड़ का पतन उनकी अयोग्यता का परिचायक है। जहां वे स्वतन्त्रता के लिये पिताके समान कष्ट भोगने में असफल सिद्ध हुये, वहां वे पिता के समान आत्म-संयमी भी नहीं निकले। कृतज्ञता-प्रकाशन आदि गुण भी उनमें पिता के अनुरूप नहीं थे। मेरे इस कथन की पुष्टि भामाशाह के भ्राता ताराचन्द्र के प्रति किये गये व्यवहार को पढ़ कर सहज ही हो सकती है। जो घटना ताराचन्द्र के परिवार की मृत्यु की भूमिका बनी, उस घटना का उल्लेख श्री मुन्शीजी ने इस प्रकार किया है—

‘ताराचन्द्र गोड़वाड़ का हाकिम था, वह बड़े अमीराना ठाठ से सादड़ी में रहता था। उसने कीतू नाम की एक खवासन घरमें रख छोड़ी थी। वह बहुत सुन्दर थी। महाराणा प्रतापसिंहके बेटे अमरसिंह ने उसकी इस सुन्दरता का वर्णन सुन कर उसे माँगा, तो ताराचन्द्र ने उसे न दिया। इसपर महाराणा ने उसे उदयपुर बुलवा कर मरवा डाला। नैनूराम सेवक उसका गवैया था। वह उसकी पगड़ी लेकर सादड़ी में आया। पगड़ी के साथ उसकी चारों औरतें, खवासन कीतू, ६ गायिकाएं, नैनूराम और उसकी औरत, ताराचन्द्र की एक फूफी, उसका पति और एक मुसलमान औलिया कुल २० आदमी चिता बना कर जल मरे। २१ वीं एक घोड़ी भी थी। *

ताराचन्द्र लूंकामत का अनुयायी था, उसने लूंकामत के प्रचार के लिये अपने जीवन में अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये थे। उसके कार्यों की महत्ता संस्कृत की एक पट्टावली के निम्न अंश से भली प्रकार ज्ञात हो जाती है:—

‘‘ताराचन्द्रेण सादड़ी नाम नगरं स्थापितं, सर्वत्र पौषधशालादिकानि स्थानानि कारितानि स्थाने स्थाने पुरे पुरे ग्रामे ग्रामे बहुजनेभ्यो धनं दायं २

* वीर शासन १६ दिसम्बर १९५२ पृ० ७।

मंथन

स्वगणीयाः कृताः श्री नागोरीय लुंकागणोतिख्याति माय पुनः भामाशाहेन दिगम्बर मतना नर सिंघ पौरा स्वगणे स्वमानतर बहुस्वं दत्ता १७०० गृहाणि तेषामात्मीयानि कृतानि भिंडारकादिपुरेषु ।

अर्थात् ताराचन्द्र ने सादड़ी नगर बसाया, पौषधशालादि बनाये व अनेकों को धनादि का प्रलोभन दे नागोरी लुंकामत के अनुयायी बनाये । ईडर आदि में नरसिंहपुरे दिगम्बर जैनों के १७०० घर इस गच्छ के अनुयायी थे ।' +

+ वीर शासन १ जनवरी १९५३ पृ० ७ ।

उपर्युक्त कथन से ज्ञात होता है कि ताराचन्द्र ने कितने लोकोपकारी कार्य किये । लुंकामत का एक सफल प्रचारक होने के कारण आज भी लुंकामत के अनुयायी उसके नाम का समादर करते आ रहे हैं । 'जिस बावड़ी पर ताराचन्द्र की बैठक थी, उसी बावड़ी पर ताराचन्द्र, उनकी औरतों, दासियों और घोड़ी की मूर्तियाँ बना कर वि० सं० १६४८ वैशाख कृष्ण ९ को प्रतिष्ठा करवायी गयी थी । आज भी लूंकामत वाले उन मूर्तियोंकी केशर चन्दन से पूजन व अंगी रचना करते हैं, सदैव वहां जाकर दर्शन करते हैं, लोंकों के साधु साधवियाँ भी वहां दर्शन करने को जाते हैं । लूँकों में कोई दीक्षा हो तो पहिले ताराचन्द्र के वहां जाते हैं । तपश्चर्या हो तो गाजा बाजा के साथ बहुत लोग वहां जाया करते हैं । इतना ही नहीं, ताराचन्द्र की मूर्ति को लुंका एक तीर्थ समझते हैं । ‡

उक्त विवरण श्री रत्नप्रभाकर ज्ञानपुष्पमाला फलौदी से सं० १९८५ में 'श्री जैन श्वेताम्बर मूर्ति पूजक गोड़वाड़ और सादड़ी लुंकामतियों के मतभेद का दिग्दर्शन' नामक पुस्तक से उल्लिखित है । पाठक इससे भलीभाँति अनुमान लगा सकते हैं कि केवल वीरता के ही क्षेत्र में नहीं, धर्म के क्षेत्र में भी ताराचन्द्र का एक महत्वपूर्ण स्थान रहा है । साथ ही साथ यह भी निश्चित हो जाता है कि ताराचन्द्र की मृत्यु सं० १६४८ में हुई । उपर्युक्त सतीवाड़े को मुंशी देवीप्रसादजी ने भी आर्कियोलाजिकल सर्वे के एक दौरे में कसबे सादड़ी परगना गोड़वाड़ के बाहर देखा था । अस्तु —।

‡ वीर शासन १६ दिसम्बर १९५२ पृष्ठ ७ ।

अपने भ्राता की मृत्यु का कारण अमरसिंह के अन्याय को जान कर भी भामाशाह ने मेवाड़ के सिंहासन के प्रति अपनी भक्ति में न्यूनता नहीं आने दी। वे निर्विकार भाव से जीवन के अन्तिम क्षण तक मेवाड़ के प्रति पूर्ण स्वामीभक्त बने रहे। सं० १६५३ में महाराणा प्रतापसिंह के परलोकवासी हो जाने पर भी भामाशाह अपनी नीति और कुशलता से अमरसिंह के मंत्री के रूप में शासन में पूर्ण योग देते रहे। उनकी मृत्यु के विषय में वीर-विनोद पृष्ठ २५१ पर लिखा है:—

‘भामाशाह बड़ी जुरअत का आदमी था। वह महाराणा प्रतापसिंह के शुरू समय से महाराणा अमरसिंह के राज्य के २॥ तथा ३ वर्ष तक प्रधान रहा। इसने ऊपर लिखी हुई बड़ी बड़ी लड़ाइयों में हजारों आदमियों का खर्चा चलाया। यह नामी प्रधान सं० १६५६ माघ शु० ११ (हि० १००९। सा० ९ रजलाई १६०० ता० १७ जनवरी) को ५१ वर्ष ७ महीने की उमर में परलोक को सिधारा। इसने मरने के पहिले एक दिन अपनी स्त्री को एक बही अपने हाथ की लिखी हुई दी और कहा कि इसमें मेवाड़ के खजाने का कुल हाल लिखा हुआ है। जिस वक्त तकलीफ हो यह बही उन राणा की नज़र करना। यह खैरखाह इसी बही के लिखे कुल खजाने से महाराणा अमरसिंह का कई वर्षों तक खर्च चलाता रहा। मरने पर इसके बेटे जीवाशाह को महाराणा अमरसिंह ने प्रधान पद दिया था। वह भी खैरखाह आदमी था। लेकिन भामाशाह की सानी का होना कठिन था। *

भामाशाह के पीछे महाराणा अमरसिंह ने इसे (जीवाशाह को) अपना प्रधान बनाया। सुलह होने पर कुँवर कर्ण सिंह जब बादशाह जहाँगीर के पास अजमेर गया, उस समय यह राज्यभक्त प्रधान जीवाशाह उसके साथ था। +

जीवाशाह के स्वर्गासीन हो जाने पर उसका पुत्र अक्षयराज महाराणा कर्ण-

* राजपूताने के जैन वीर पृष्ठ ९६।

+ राजपूताने के जैन वीर पृष्ठ १००।

संथन

सिंह का मन्त्री नियत हुआ । १* और राणा कर्णसिंह के परलोकवासी होने पर राणा जगतसिंह का भी प्रधान यही रहा । राणा प्रताप के समय से ही डूंगरपुर बादशाही अधीनता में चला गया था, जिससे वहां के रावल उदयपुरकी अधीनता नहीं मानते थे । इसलिये महाराणा ने अपने अक्षयराज को सेना देकर रावल पर (जो उस समय डूंगरपुर का स्वामी था) भेजा, उसके वहां पहुंचने पर रावल पहाड़ों पर चला गया । ॥ श्री ओम्भा जी ने लिखा है कि इस प्रकार चार पीढ़ियों तक स्वामिभक्त भामाशाह के घराने में प्रधान पद रहा ।....भामाशाह का नाम मेवाड़ में वैसा ही प्रसिद्ध है, जैसा कि गुजरात में वस्तुपाल तेजपाल का । ॥

भामाशाह की हवेली चित्तौड़ में तोपखाने के सामने वाले कवायद के मैदान के पश्चिम किनारे पर थी । जिसको महाराणा सज्जनसिंह ने कवायद का मैदान तैयार कराते समय तुड़वा दिया । X अस्तु —

इस प्रकार भामाशाह का महात्याग इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्णाक्षरों में उल्लेखनीय है । पर रायबहादुर महामहोपाध्याय पं० गौरीशंकर हीराचन्द्रजी ओम्भा ने अपने उदयपुर राज्य के इतिहास में 'महाराणा प्रताप की सम्पत्ति' शीर्षक के नीचे महाराणा के निराश होकर मेवाड़ छोड़ने और भामाशाह के रुपये दे देने पर फिर चढ़ाई के लिये तैयारी करने की प्रसिद्ध घटना को असत्य ठहराया है ।

इस विषय में उनकी युक्ति का सार 'त्याग भूमि' के शब्दों में इस प्रकार है:—

“महाराणा कुम्भा और साँगा आदि द्वारा उपार्जित अतुल सम्पत्ति अभी तक मौजूद थी । बादशाह अकबर इसे अभी तक न ले पाया था । यदि यह सम्पत्ति न होती तो जहाँगीर से सन्धि होने के बाद महाराणा अमरसिंह उसे इतने अमूल्य रत्न कैसे देता ? आगे आने वाले महाराणा जगतसिंह तथा राजसिंह अनेक महादान

* रा० पू० इ० खं० ती० पृ० ७८७ ।

॥ रा० पू० इ० खं० ती० पृ० ८३३ ।

॥ रा० पू० इ० खं० ती० पृ० ७८७ ।

X श्री नाहटाजी का निबन्ध 'भामाशाह का घराना' ।

किस तरह देते और राज-समुद्रादि अनेक बृहत् व्ययसाध्य कार्य किस तरह सम्पन्न होते ? इसलिये भामाशाह ने अपनी तरफ से न देकर भिन्न २ सुरक्षित राजकोषों से रुपया लाकर दिया ।” *

इसपर ‘त्यागभूमि’ के विद्वान् समालोचक श्री हंसजी ने लिखा है:—

“निस्सन्देह इस युक्ति का उत्तर देना कठिन है, परन्तु मेवाड़ के महाराणा प्रताप को भी अपने खजाने का ज्ञान न हो यह मानने को स्वभावतः किसी का दिल तैयार न होगा । ऐसा मान लेना महाराणा प्रताप की शासन-कुशलता और साधारण नीतिमत्ता से इन्कार करना है । दूसरा सवाल यह है कि यदि भामाशाह ने अपनी उपार्जित सम्पत्ति न देकर केवल राजकोषों की ही सम्पत्ति दी होती, तो उसका और उसके वंश का इतना सम्मान जिसका उल्लेख श्री ओझाजी ने ‘उदयपुर राज्य का इतिहास’ में पृष्ठ ७८८ पर किया है, हमें सम्भव नहीं दिखता । एक खजांची का यह तो साधारण सा कर्तव्य है कि आवश्यकता पड़ने पर कोष से रुपया लाकर दे । केवल इतने मात्र से उसके वंशधरों की यह प्रतिष्ठा (महाजनों के जाति भोज के अवसर पर पहिले उसको तिलक किया जाना) यह कुछ बहुत युक्तिसंगत नहीं मालूम होता ।” ‡

‘त्यागभूमि’ के विद्वान् समालोचक श्री हंसजी की उक्ति का समर्थन करते हुए श्री गोयलजी ने भी लिखा है:—

“इस आलोचना में ओझाजी की युक्ति के विरुद्ध जो कल्पना की गयी है, वह बहुत कुछ ठीक जान पड़ती है । यदि श्री ओझा जी का यह लिखना ठीक मान लिया जाये कि महाराणा कुम्भा और साँगा आदि द्वारा उपार्जित अतुल सम्पत्ति प्रताप के समय तक सुरक्षित थी, वह खर्च नहीं हुई थी तो वह सम्पत्ति चित्तौड़ या उदयपुर के कुछ गुप्त खजानों में सुरक्षित रही होगी । भले ही अकबर को उन खजानों का पता न चल सका हो, पर इन दोनों स्थानों पर अकबर का अधिकार तो पूरा हो गया था और ये स्थान अकबर की फौज से बराबर घिरे

* उदयपुर का इतिहास जिल्द १ पृष्ठ ४६३-४६६ ।

‡ त्यागभूमि वर्ष ३ अंक ४ पृष्ठ ४४५

मंथन

रहते थे । तब युद्ध के समय इन गुप्त खजानों से अतुल सम्पत्ति का बाहर निकाला जाना कैसे सम्भव हो सकता था ? और इसलिये हल्दीघाटी के युद्ध के बाद जब प्रताप के पास पैसा न रहा तब भामाशाह ने देशहित के लिये अपने पास से खुद के उपार्जन किये हुए द्रव्य से भारी सहायता देकर प्रताप का यह अर्थ-कष्ट दूर किया है, यही ठीक जंचता है । रही अमरसिंह और जगतसिंह द्वारा होनेवाले खचों की बात । वे सब तो चित्तौड़ और उदयपुर के पुनः हस्तगत करने के बाद ही हुए हैं और उनका उक्त गुप्त खजानों की सम्पत्ति से होना सम्भव है, तब उनके आधार पर भामाशाह की उस सामयिक विपुल सहायता तथा भारी स्वार्थ-त्याग पर कैसे आपत्ति की जा सकती है ? अतः इस विषय में ओम्भाजी का कथन कुछ युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता और यही ठीक जंचता है कि भामाशाह के इस अपूर्व त्याग की बदौलत ही उस समय मेवाड़ का उद्धार हुआ था और इसीलिये आज भी भामाशाह मेवाड़ोद्धारक के नाम से प्रसिद्ध हैं । +

श्री ओम्भाजी की निराधार युक्ति का खंडन करने के लिये श्री हंसजी और श्री गोयलीयजी के उक्त तर्क सर्वथा समर्थ हैं, अतः इस विषय पर अधिक कुछ लिखना पिष्टपेषण ही होगा ।

भामाशाह की उदारता और स्वामिभक्ति का ही परिणाम है, जो आज हम उनका नाम स्मरण करते हुए भी गौरव का अनुभव करने लगते हैं । केवल जैन ही नहीं, प्रत्येक भारतीय उन्हें अपने पूर्वज के रूप में पाकर धन्य है । यही कारण है जहां राणा प्रतापसिंह की वीरता और स्वदेशभक्ति की चर्चा की जाती है वहां भामाशाह के नाम को भी कोई सहृदय नहीं भुला सकता । यदि हम महाराणा प्रतापसिंह को मेवाड़-मेदिनी-रूप सीता का उद्धारक राम माने तो भामाशाह को राम के प्रमुख सहायक 'हनुमान' की संज्ञा सादर दी जा सकती है । मेरे हितैषी साहित्यकार श्री सुमेरुचंद्र जी दिवाकर न्यायतीर्थ शास्त्री ने अपने संदेशमें महाराणा और त्यागवीर भामा का सम्बन्ध मणि-कांचन योग के सदृश मनोहर बतलाया है—जो सर्वथा उपयुक्त है ।

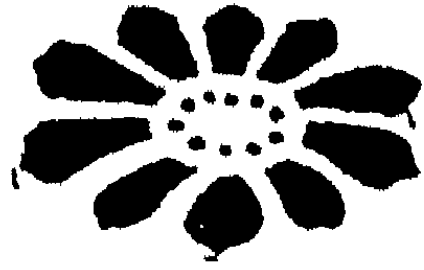
+ राजपूताने के जैन वीर पृ० ९९ ।

जब तक मेवाड़ के नाम को जानने वाला एक भी व्यक्ति विश्व में रहेगा, तब तक मेवाड़ उद्धार के लिये किये गये महाराणा प्रतापसिंह के प्रयत्नों की प्रशंसा होती रहेगी और जब तक महाराणा प्रतापसिंह के अनुपम प्रताप की घोषणा इतिहास के पृष्ठ करते रहेंगे, तब तक भामाशाह के अपूर्व त्याग के प्रति इतिहास-प्रेमियों के मुखसे 'धन्य-धन्य' की ध्वनियाँ निकलती रहेंगी ।

प्रताप और त्याग की इस युगल मूर्ति को नाटककार का शतशत बन्दन है ।

नागौद
(विन्ध्यप्रदेश)

—धन्यकुमार जैन 'सुधेश'



नाटक के पात्र

पुरुष पात्र

उदयसिंह—मेवाड़ के महाराणा
भारमल्ल—भामाशाह के पिता,
उदयसिंह के मन्त्री
प्रतापसिंह—मेवाड़ के महाराणा
भामाशाह—भारमल्ल के पुत्र,
उदयसिंह के मन्त्री
भोमानाहटा—भामाशाहका स्वसुर
ताराचन्द्र—भामाशाहका लघुभ्राता
अमरसिंह—महाराणा प्रतापसिंह
का पुत्र
मालवेन्द्र—मालवा के नरेश
अकबर—दिल्ली का यवन सम्राट
मानसिंह—अकबर का आश्रित
राजपूत नरेश
मिर्जाखां—अकबरका एक सेनापति
रामा सहाणी—प्रतापसिंह का
अस्थायी मन्त्री
साईंदास देवड़ा—बसी का राव
नैनूराम—ताराचन्द्र का आश्रित
गायक
ज्योतिषी, मन्त्री, गुप्तचर, सामन्त,
जैन संत, कोषाध्यक्ष आदि

स्त्री पात्र

वीरा-उदयसिंहकी प्रेमिका वारांगना
*मोहिनीदेवी—भारमल्लकी पत्नी
पद्मावती—महाराणा प्रतापसिंह
की राज्ञी
*मनोरमा—भामाशाह की पत्नी
*अलका सुन्दरी—भोमानाहटा
की पत्नी
कीतू—ताराचन्द्र की आश्रिता एक
सुन्दरी
*केतकी—ताराचन्द्र की प्रमुख
गायिका
गायिकाएं, राजकुमारी आदि

* चिन्हित नाम कल्पित हैं ।

सम्पत्ति-दान-यज्ञ का प्रथम होता

भामाशाह

(ऐतिहासिक नाटक)

अङ्क १

दृश्य १

स्थान—भारमल्ल का भवन ।

समय—सन्ध्या ।

(पुत्र जन्मोत्सव का उल्लसित वातावरण, द्वार पर शहनाई की ध्वनि, सौर-गृह में सुहागिन सुन्दरियों के सोहर गान, क्रमशः अनेक प्रतिष्ठित नागरिकों का आगमन, भारमल्ल द्वारा ताम्बूल, इत्र आदि से सम्मान प्रदर्शन, अनन्तर पार्श्व में पंचांग दबाये एक तिलकधारी ज्योतिषी का आगमन, 'नमस्कार विप्रवर' 'नमस्ते गुरो' आदि शब्दों द्वारा उपस्थित मण्डली की ओर से अभिवादन, सहज हास्य पूर्वक अभिवादन का प्रत्युत्तर देते हुए आसन ग्रहण)

भारमल्ल—भूदेव ! आज मेरी भार्या की कुक्षि से जन्म लेकर एक शिशु ने मुझे पिता बनने का अवसर दिया है । उसी नवजात बालक का भाग्यफल श्रवण और जन्मपत्रिका निर्माण के निमित्त आपको कष्ट दिया गया है ।

ज्योतिषी—शाह ! इसमें कष्ट क्या ? यह तो हमारा कार्य है । मैं पूजा गृह में सन्ध्या-वन्दन कर रहा था, उसी समय आपके सेवक

भामाशाह

ने आ यह शुभ सम्वाद मुझे सुनाया। सुनते ही आनन्दानुभव हुआ। संध्या विधि समाप्त होते ही पंचांग ले आपकी सेवा में उपस्थित हो गया।

भारमल्ल—महती कृपा की विप्रवर ! पर क्या आपने अपने पंचांगमें देखा कि ज्योतिष शास्त्र इस बालक का भविष्य कैसा बतलाता है ?

ज्योतिषी—अभी कहाँ ? अब आपका आदेश है तो अभी भविष्य फल निकालने में कितनी देर ? अभी लीजिये।

भारमल्ल—पर इसके पूर्व यह भी सूचित करिये कि कैसे मुहूर्त्त में इसका जन्म हुआ है ? कैसे ग्रह पड़े हैं ? शारीरिक लक्षण शुभ सूचक हैं या नहीं ? मैं सुनने का बड़ा ही उत्सुक हूँ।

ज्योतिषी—आपकी प्रत्येक जिज्ञासा का समाधान अभी किये देता हूँ। (पंचांग खोल अंगुलियों के पोरों पर गणना करते हुए) शाह जी ! आपका यह बालक गर्भ से ही असाधारण महापुरुष बनने का भाग्य लेकर आया है। इसका जन्म भी शुभतम मुहूर्त्त में हुआ है, ग्रह भी शुभ ही पड़े हैं और नक्षत्र भी शुभ।

भारमल्ल—पर इन शुभ मुहूर्त्त और शुभ ग्रहों का इसके भाग्य पर क्या प्रभाव पड़ेगा ?

ज्योतिषी—कुछ मत पूछिये शाह ! इसका भाग्य आपसे किसी भी प्रकार न्यून नहीं। यह किसी गौरवशाली नरेश का प्रधान सचिव बनकर अनंत कीर्ति का स्वामी होगा।

भारमल्ल—धन्यवाद ! अब इसके स्वास्थ्य और आयु के विषय में भी जानने की लालसा हो रही है।

ज्योतिषी—स्वास्थ्य इसका उत्तम रहेगा । पराक्रम प्रतिपक्षियों की पराजयका कारण बनेगा और जीवन पंचाशत्से अधिक ही मधुमासों का दर्शन करेगा ।

भारमल्ल—धन्य हैं आप, जो भविष्य के भूगर्भमें अन्तर्हित निधियों को हस्तामलकवत् देख लेते हैं ।

ज्योतिषी—इसमें मेरी क्या विशेषता ? ज्योतिष विद्या के बल से अनेक रहस्यों का उद्घाटन सहज सम्भाव्य है । आप अपने विषय में कोई भी प्रश्न निस्संकोच करें और फिर देखें ज्योतिष का चमत्कार ! ज्योतिष की परीक्षा लीजिये ।

भारमल्ल—नहीं, मुझे अपने विषय में नहीं, उसी पुत्र के विषय में ही कुछ और प्रश्न करने की लालसा है ।

ज्योतिषी—कीजिये, आपका कोई प्रश्न उत्तर पाये बिना शून्य व्योम में विलीन नहीं हो सकता ।

भारमल्ल—प्रश्न यही है कि इसे कभी धनाभाव तो कष्ट न देगा ?

ज्योतिषी—नहीं, इसकी शंका स्वप्न में भी न करिये । इस विषय में इसका भाग्य आपसे भी श्रेष्ठतर है । इसका हेतु भी आपसे कह दूं, इसको अपने विवाहके निमित्तसे दक्षिणावर्त्त शंखकी प्राप्ति होगी ।

भारमल्ल—(विस्मयसे) दक्षिणावर्त्त शंख ! इससे क्या होता है गुरो ?

ज्योतिषी—यह शंख देवस्वरूप होता है, जिस गृह में इसका निवास हो जाता है उसमें साक्षात् लक्ष्मी ही निवास करने लगती है । करोड़ों की सम्पदा सदैव हाथ जोड़े खड़ी रहती है ।

भारमल्ल—(विस्मय से) तो यह गरिमाशाली शंख इसे मिल जायेगा ?

भामाशाह

ज्योतिषी—मिलेगा, अवश्य मिलेगा यह दुर्लभ शंख-रत्न । ज्योतिष का कथन कभी मिथ्या नहीं होता । पर यदि यह कभी अपनी उदारता से सर्वस्व भी दान कर दे तो भी आश्चर्यजनक न होगा ।

भारमल्ल—इतनी उदारता ! हो, कोई हानि नहीं । उदारता कोई शोचनीय अवगुण नहीं, प्रशंसनीय गुण ही है ।

ज्योतिषी—अब चलने की आज्ञा दीजिये, अभी दो चार गृहों में और जाना है ।

भारमल्ल—(सविनय) अभी दो क्षण और रुकिये, पुत्र का नाम संस्करण क्या हो ? इतना और ज्ञातव्य है ।

ज्योतिषी—(कुछ सोंचकर) 'भामा' अर्थात् स्त्री के निमित्त से इसका भाग्य चमकने वाला है और आप लोग वंश, परम्परा से 'शाह' कहलाते ही हैं । अतः 'भामाशाह' नाम सार्थक और सुन्दर रहेगा ।

भारमल्ल—(सहास) साधुवाद महाराज ! साधुवाद !! आपके मस्तिष्क में भी क्या सुन्दर नाम सूझा । (११ स्वर्ण मुद्राएं हाथ में देते हुए) यह लीजिये अपनी दक्षिणा । आज आपको जो कष्ट दिया, उसके लिये क्षमा कर कृपा-भाव बनाये रखें ।

ज्योतिषी—(मुद्राएं मुट्ठी में दबा प्रसन्न होकर) अब आज्ञा दीजिये, जब कभी आवश्यकता पड़े, स्मरण कीजियेगा ।

(गमन, पश्चात् अन्य अभ्यागतों का भी गमन)

पटाक्षेप

दृश्य २

स्थान—भोमा नाहटा का शयनागार

समय—रात्रि

(एक ओर श्वेत वस्त्राच्छादित मणिमय पर्यंक, अन्य ओर स्वर्णमय सुन्दर चतुष्क्रिका पर रत्नजटित सिंहासन, सिंहासन पर प्रतिष्ठापित दक्षिणावर्त्त शंख और समीप ही एक बहुमूल्य दीपाधार में प्रदीप्त दीप, आरती का पात्र लिये भोमा नाहटा तथा स्वर्णथाल में जल, चन्दन, अक्षत आदि पूजन-सामग्री लिये उनकी पत्नी अलकासुंदरी का प्रवेश)

भोमा—(दक्षिणावर्त्त शंख के समक्ष पूजन-सामग्री का थाल रख)
मेरे देवता ! जिस दिन तुम इस दरिद्र की कुटिया में अवतीर्ण हुए, अष्टादश कोटि धनराशि जाने कहाँ से प्रकट हो गयी, जो निरन्तर व्यय करने पर भी अक्षय बनी हुई है । यही कारण है जो मेरी श्रद्धा पूर्णिमा की शशि-कला-सी पूर्णता को प्राप्त हो गयी है । चाहे जैसी स्थिति में होऊँ जब तक तुम्हारा पूजन अर्चन नहीं कर लेता, शय्या पर चरण रखने की इच्छा नहीं होती ।

लो, नित्यवत् आज भी मेरा अर्चन स्वीकार करो । (आरती करते हुए गायन और पत्नी का वीणावादन)

गीत

हमारी प्रभुता के आधार ।

तुम्हारा वन्दन है शत बार ॥ हमारी० ॥

जिस दिन हुवा तुम्हारा आना ।

गृह में आयी सम्पत् नाना ॥

भरा निधियों से आगार ॥ तुम्हारा० ॥

भामाशाह

कभी न तजना देव ! निकेतन ।

तव चरणों में यही निवेदन ॥

इसे अब कर लो तुम स्वीकार ॥ तु० ॥

(गीत समाप्त होने के पूर्व ही सहसा आरती की दीपशिखासे दुपट्टे का संयोग और दुपट्टे का प्रज्वलन, अलकासुन्दरी का वीणा छोड़ कर अग्नि-शमन)

अलका सुन्दरी—नाथ ! आज यह कैसा अमंगल ? क्या हमारे देवता को अब हमारी पूजा स्वीकार नहीं जो ऐसा अशकुन हो रहा है ? आपके दुपट्टे में अग्नि का संयोग अवश्य ही किसी अनिष्ट का संकेत है ।

भोमा—प्रिये ! चिन्ता मत करो । हमारे ललाट में जो भी लिपि लिखी होगी, वह सार्थक होकर रहेगी । जाओ, इस दुर्घटना को भूल कर शयन करो, मैं भी इस दुर्घटना को भूल जाने के लिये शयन करता हूँ ।

(अलकासुन्दरी का गमन और भोमा का चादर से मुखाच्छादन कर पर्यङ्क पर शयन)

[नेपथ्य से] भोमा ! निद्रामग्न हो क्या ?

भोमा—(अर्द्ध निद्रितावस्था में) कौन मेरी निद्रा में बाधा देने आया है ?

[नेपथ्य से] मैं हूँ, तुम्हारा शंख देवता, तुम्हारे गृह से जाने के पूर्व तुम्हें सूचना देने आया हूँ । ध्यान से सुनो, तुम्हारी भार्या की कुक्षि में कोई जीव कन्या रूप में आया है और यहीं भारमल्ल काव-डिया की भार्या की कुक्षि से एक ऐसे महा भाग्यवान पुत्र ने जन्म लिया है, जिसका महापुण्य मुझे वहाँ जाने को बाध्य कर रहा है ।

भोमा—(सहसा चौंक विस्मयकी मुद्रामें) हैं, क्या शंख देवता मेरे गृह से जा रहे हैं ? यह केवल स्वप्न है या सत्य ? स्वप्नदाता शंख देवता हैं या अन्य कोई ? विकट समस्या है, बुद्धि विभ्रम में पड़ रही है ।

[नेपथ्य से] विभ्रम में मत पड़ो, अभी २ जो तुमने स्वप्न देखा वह साधारण स्वप्न नहीं, सत्य है उतना ही, जितना तुम्हारा मनुष्य होना । अब तुम्हारे गृह में वास करने में मुझे असमर्थता है । अतः संकल्प विकल्प त्याग, प्रसन्न हृदय से विदा दो ।

भोमा—विदा दूँ ? किसे ? उसे ? जिसकी अर्चना मेरी दिनचर्या का एक प्रधान अंग थी । विदा दूँ उसे, जिसके प्रसादकी नींव पर मेरे ऐश्वर्य का मन्दिर निर्मित हुवा है ? नहीं, यह मुझसे नहीं हो सकेगा मेरे देवते !

[नेपथ्य से] पर तुमसे न हो सकने से मेरे गमन में कोई बाधा नहीं आ सकती, मुझे जाना ही पड़ेगा और शीघ्र ही जाना पड़ेगा । पर मेरी अभिलाषा थी कि आगमन के समय से आज तक जिसकी प्रसन्नता का कारण बनता रहा, गमन के समय उसकी अप्रसन्नता का कारण न बनूँ ।

भोमा—यदि तुम्हारी इतनी कृपा है तो मैं स्वयं तुम्हारे अभीष्ट स्थान पर पहुंचाने में सहायक बनूंगा । केवल आजकी रात्रि और मेरे गृह में वास करो, मेरे देवते !

[नेपथ्य से] जैसी तुम्हारी इच्छा, मैं अपने भक्त का यह अन्तिम अनुरोध नहीं ठुकरा सकता । पर इतना स्मरण रखना कि यदि कल

भामाशाह

प्रभात में भारमल्ल का भवन मेरा आवास न बन सका, तो संध्या समय इस सिंहासन को शून्य देखोगे ।

भोमा—नहीं, ऐसा न होगा मेरे नाथ ! कल मध्याह्न के पूर्व ही भारमल्ल कावड़िया का गृह आपके पदार्पण से पवित्र हो जायेगा ।

[नेपथ्य से] तथास्तु !

भोमा—प्रिये ! प्रिये !! क्या इतने शीघ्र तुम निद्राधीन हो गयीं ?

[नेपथ्य से] नहीं, आयी नाथ !

अलका०—(प्रवेश कर) आज की उस असाधारण घटना का जाने कैसा प्रभाव पड़ा कि अभी तक निद्रा नहीं आ सकी, कदाचित् आप भी नहीं सो सके । (रुक कर) पर अभी मेरे आने से पूर्व किसके साथ आपका वार्तालाप हो रहा था ? मुझे उसी समय आने की उत्कण्ठा हुई थी पर वार्तालाप के मध्य में पहुंचना असम्भ्यता समझ रुक गयी । (चारों ओर देख कर) किन्तु यहां तो आपके अतिरिक्त कोई भी दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है । फिर इस वार्तालाप का पूरक द्वितीय जन कौन था ?

भोमा—इस वार्तालाप के, अभी दो क्षण पूर्व के वार्तालाप के, पूरक थे मेरे आराध्य शंख देवता । आज तक जिनकी समुपस्थिति से इस गृह में आनन्द की वर्षा होती रही, कल प्रभात में वे इस कुटिया को छोड़ देंगे ।

अलका० — क्या आज की उस असाधारण घटना का यही असाधारण फल है ? क्या शंख देवता अब हमारे यहां वास नहीं कर सकेंगे ?

भोमा—नहीं, वे अब इस गृह को शून्य बना कर अन्यत्र चले जायेंगे ।

अलका०—कहां ? किसके यहां ? हमसे अधिक योग्य पात्र उन्हें कौन मिल सकेगा ?

भोमा—इस प्रश्न का समाधान कर चुकने पर ही उन्होंने ऐसा निश्चय किया है । भारमल्ल कावड़िया के गृह में एक भाग्यवान पुत्र ने जन्म लिया है, उसीके पुण्य से प्रेरित हो शंख देवता का वहां जाना अवश्यम्भावी है ।

अलका०—तो फिर कुछ विचारा आपने ?

भोमा—विचारा और जो भी विचारा, कदाचित् वह तुम्हें भी रुचेगा । शंख देवतासे ही ज्ञात हुआ है कि तुम्हारी कुक्षिसे एक कन्या जन्म लेने वाली है । अपनी इस भावी कन्या का परिणयन सम्बन्ध उस महा भाग्यवान बालक से करने के लिये श्रीफल के स्थान में यह दक्षिणावर्त्त शंख भारमल्ल कावड़िया को देने का मेरा निश्चय है ।

अलका०—(स्मितिपूर्वक) धन्य है आपका निश्चय और धन्य हैं आप, जिसे इतना भाग्यशाली जामाता मिल रहा है । मैं आपके इस सद्विचार की सराहना करती हूं ।

भोमा—अब रात्रि अल्प शेष रह गयी है, अतः थोड़ा शयन कर लेना चाहिये । जाओ, तुम शयन करो और मैं भी कुछ देर शयन करता हूं । प्रभात में समारोह पूर्वक शंख देवता को भारमल्ल के यहां ले चलेंगे ।

(अलकासुन्दरी का गमन और भोमाका पर्यंक पर मुखाच्छादन कर पुनः शयन)

पटाक्षेप

दृश्य ३

स्थान—भारमल्ल कावड़िया का भवन

समय—प्रभात

(गृह के बहिर्कक्ष में अपनी मित्रमण्डली के साथ भारमल्ल कावड़िया, महार्थ्य वस्त्राच्छादित दक्षिणावर्त्त शंख का स्वर्ण थाल लिये भोमा नाहटा का आगमन, भारमल्ल द्वारा उठ कर स्वागत सत्कार, पारस्परिक स्नेह-मिलन, पश्चात् अपने अपने आसनों पर उपवेशन)

भारमल्ल—धन्य मेरा भाग्य, जो मेरी कुटिया आपके पदार्पण से पवित्र हुई ।

भोमा—भाग्य आपका नहीं, मेरा है, जो आपके दर्शन का सुयोग मिला ।

भारमल्ल—कहिये, यहां तक भटकने का श्रम कैसे करना पड़ा ?

भोमा—इसमें श्रम क्या ? मेरा स्वार्थ ही आपके दर्शनों का अवसर लाया है ।

भारमल्ल—आपका स्वार्थ ? नहीं, यह सम्भव नहीं । मेरा सौभाग्य ही आपके आगमन का हेतु हो सकता है । कदाचित् इसी कारण मेरा मन-मधुप आपके मुखारविन्द से आदेश-सौरभ पाने को लालायित है ।

भोमा—आदेश नहीं; निवेदन है । वह यह कि आपके यहां एक भाग्यशाली जीव ने पुत्र रूप में जन्म लिया है और मेरी भार्या की कुक्षि से एक कन्या का जन्म निकट भविष्य में सम्भाव्य है । मेरी कामना है कि आज ही इन दोनों के सम्बन्ध के हेतु हम वचनवद्ध

हो जायें। (थाल को निरावरण करते हुए) और इसी उद्देश्य से मैं श्रीफल के स्थान में अपने गृह का सर्वश्रेष्ठ रत्न दक्षिणावर्त्त शंख लेकर आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ।

भारमल्ल—धन्य है मेरा सौभाग्य जो मेरे पुत्र को आप जैसे धन-कुबेर का जामाता बनने का सुयोग अभी से मिल रहा है और धन्य है आपकी उदारता जिसके फलस्वरूप यह दक्षिणावर्त्त शंख-सी महा-निधि आज से मेरे गृह की शोभा बन कर रहेगी।

भोमा—यह उदारता नहीं, मेरी स्वार्थपरता का एक उदाहरण है। इतना भाग्यशाली जामाता पाने के लिये यह लघु अर्पण कोई महत्व नहीं रखता।

भारमल्ल—आपके लिए भले ही यह त्याग महत्व का न हो पर मेरे लिए यह लाभ जीवन की महत्तम घटना है। इसके प्रभाव से मेरे गृह में अष्टादश कोटि धन हो जायेगा। इतना धन एकत्र देखने का सौभाग्य तो मेरे पूर्वजों को भी नहीं मिला।

भोमा—इस शंख का ऐसा ही माहात्म्य है। अब आप विधिवत् अर्चन कीजिये। अभी अष्टादश कोटि धनराशि प्रकट हो जायेगी। (कुछ रुक कर) अब मेरे अधिक रुकने से अन्य कार्यों में विलम्ब की सम्भावना है। अतः गमनानुमति की याचना है।

भारमल्ल—कैसे दूँ गमनानुमति ? जिसके संयोग से मुझे ये आह्लाद के क्षण मिले, उसके वियोग को सहने की क्षमता इस हृदय में नहीं।

भोमा—काया के क्षणिक वियोग को आप हृदयों का वियोग क्यों

भामाशाह

मानते हैं ? आज हमारे और आपके हृदय उस स्नेह-सूत्र में सदाके लिये संयुक्त हो गये हैं कि वियुक्त होना असम्भव है । जैसे पतंग आकाश में भले ही कहीं उड़ती रहे, पर जब तक उस सूत्र से दोनों का संयोग है, तब तक वह उड़ायक के हाथ में ही है । यह सोच, जाने का अवसर दीजिये ।

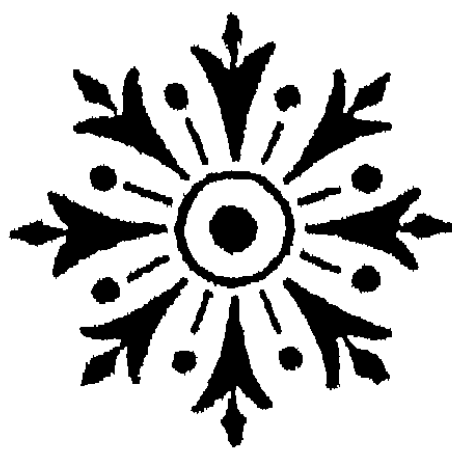
भारमल्ल—यदि आपकी यही इच्छा है तो मैं स्वयं आपको पहुंचाने चल रहा हूं ।

भोमा—आप मेरे लिये इतना कष्ट क्यों उठा रहे हैं ?

भारमल्ल—इसमें कष्ट कहाँ ? अब हम और आप एक हैं, अतएव आपकी सुविधा में ही मेरी सुविधा निहित है ।

[गमन]

पटाक्षेप



दृश्य ४

स्थान—चित्तौड़ का मंत्रणा-गृह

(महाराणा उदय सिंह और उनके मंत्री)

उदय सिंह—महामात्य ! इस समय रणथम्भौर दुर्ग की सुरक्षा सर्वाधिक आवश्यक है । कारण यह राज्य का दृढ़तम दुर्ग है, पर अभी दुर्ग-रक्षा की व्यवस्था समुचित नहीं । मैं व्यवस्था सुदृढ़ करने के लिये किसी योग्य व्यक्ति की खोज में हूँ । पर कोई दीख नहीं रहा, यदि आपकी दृष्टि में कोई उपयुक्त व्यक्ति हो तो कहिये ।

मंत्री—अवश्य है नरेन्द्र ! पर वह चित्तौड़ का वासी नहीं, अलवर का वासी एक साहसी और वीर पुरुष है ।

उदय सिंह—दुर्ग-रक्षा जैसे कार्य के लिये साहसी और वीर तो चाहिये ही । क्या आपको उसका नाम और जाति आदि ज्ञात है ?

मंत्री—ज्ञात है पृथ्वीपति ! नाम उसका शाह भारमल्ल और जाति जैन है ।

उदय सिंह—जैन ! अहिंसा का अनुयायी जैन ! तब क्या वह दुर्ग की प्राचीरों पर खड़ा होकर शत्रु पर गोले बरसा सकेगा ? दुर्ग-द्वार से प्रविष्ट होने वाले शत्रु-सैनिकों के बक्षस्थलों में बछियां भोंक सकेगा ? क्या उसका अहिंसा धर्म दुर्ग को शत्रुदल के आधीन होने से बचा सकेगा ?

मंत्री—बचा सकेगा महीपते ! जैन कुलोत्पन्न होने पर भी उसने शास्त्र विद्या के समान शस्त्र विद्या का भी अभ्यास किया है । उसकी

भामाशाह

बुद्धिमत्ता और वीरता पर मुझे पूर्ण विश्वास है। यही कारण है जो मैं उसे दुर्ग-रक्षक के पद के लिये उपयुक्त मानता हूँ।

उदय सिंह—हो सकता है आपकी धारणा सत्य हो, पर एक विजातीय से स्वामिभक्ति की आशा कैसे की जा सकती है? स्वजातीय राजपूत होता तो मैं उसे विशेष विश्वासपात्र समझता।

मंत्री—मेवाड़पते ! ऐसी कल्पना न करें। जैन राजपूतों की अपेक्षा अधिक विश्वासपात्र हैं। उनकी स्वामिभक्ति के विषय में आपको मुझसे भी अधिक अनुभव है। जब आपके शैशव में ही वीरांगना पन्ना धाय दुष्ट बनवीर के जाल से आपको मुक्त कर भाग निकली थी, तब किसी भी राजपूत नरेश ने आपको आश्रय देने का साहस नहीं किया। पर जैनरत्न आशाशाह की वीर माता ने बनवीर की कोपाग्नि की चिन्ता न कर अपनी गोद में शरण दी थी और आशा-शाह ने वर्षों गुप्त रीति से आपका पालन कर अपनी स्वामिभक्ति का अनुपम आदर्श उपस्थित किया था। उसी अभयदानी आशाशाह के अति साहस के फलस्वरूप आज हम आपको अपने स्वामी के रूप में देख रहे हैं।

उदय सिंह—सत्य कहते हो अमात्यवर ! वास्तव में आशाशाह ने मुझे शरण दे अपने सर्वनाश को ही शरण दिया था, पर उसकी बुद्धिमत्ता और दैव की अनुकूलता से ऐसा दुर्दिन न आया। निस्सन्देह उसका यह अभयदान जैन जाति पर विश्वास करनेके लिये बाध्य कर देता है।

मंत्री—इसी कारण मुझे भारमल्ल की कर्तव्यनिष्ठा पर विश्वास

हैं । यदि आपका आदेश हो तो दूत द्वारा पत्र भेज कर उन्हें चित्तौड़ बुलवाया जाये ।

उदय सिंह—अवश्य बुलवाइये और रणथम्भौर का दुर्ग-रक्षक नियुक्त कीजिये ।

पटाक्षेप

दृश्य ५

स्थान—अलवर में भारमल्ल के भवन का द्वार

समय—प्रभात बेला

(षटवर्षीय 'भामा' का एक लघु धनुष और बाण लिये द्वार से बहिरागमन पुनः भित्ति पर क्षीण सूत्र के सहारे लटकते हुए कन्दुक की ओर शर-संचालन, तत्काल ही शर के आघात से कन्दुक का भूपतन, इसी क्षण चित्तौड़ के राजदूत को प्रवेश ।)

दूत—कुमार ! तुम्हें लक्ष्यवेध का सुन्दर अभ्यास है, ज्ञात होता है तुम्हारी धनुर्वेद की शिक्षाके लिये कोई योग्य धनु-विशारद नियुक्त है ।

भामा—नहीं, मेरी शस्त्र-शिक्षा के लिये कोई भी शिक्षक नियुक्त नहीं किया गया ।

दूत—पर शिक्षक के अभाव में भी धनुर्विद्या में इतनी दक्षता मुझे विस्मित कर रही है । सम्भवतः तुम्हारे तात ही अभ्यास कराते होंगे ।

भामाशाह—आपका अनुमान यथार्थ है, यह पितृवर के ही शिक्षण का फल है ।

भामाशाह

दूत—तुम्हारे तात भी इस कला में दक्ष प्रतीत होते हैं, क्या मैं उनका शुभ नाम जान सकता हूं ?

भामा—अवश्य, पर उनका परिचय देने से पूर्व मैं आपका परिचय जानने को उत्सुक हूं ।

दूत—निर्भीक बालक ! इस वय में तुम्हारा यह वाक्चातुर्य साधारण नहीं । पर मेरा परिचय जान कर क्या करोगे ? मैं विदेशी यात्री हूं और एक आवश्यक कार्यवश ही यहां आया हूं ।

भामा—क्या आप वह कार्य मुझे अवगत करा सकेंगे ? सम्भव है मुझसे आपकी कुछ सहायता हो सके ।

दूत—करना चाहो तो अवश्य हो सकेगी ।

भामा—आप आज्ञा दीजिये, मैं तत्पर हूं ।

दूत—तत्पर हो तो मुझे शाह भारमल्ल के भवन का मार्ग दर्शन करा दो ।

भामा—आपके इस कथन से ज्ञात होता है कि आपका कार्य उन्हीं से है ।

दूत—कुमार ! तुम्हारा अनुमान ठीक है, मुझे उन्हीं से मिलने की अभिलाषा है ।

भामा—आपकी अभिलाषा शीघ्र ही पूर्ण होगी, इस समय आप उन्हीं के गृह के द्वार पर खड़े हैं । (नेपथ्य की ओर संकेत कर) वह देखिये, पितृवर भी जिनालय से पूजन कर इधर ही आ रहे हैं ।

(भारमल्ल का आगमन)

भामा—तात ! (दूत की ओर संकेत कर) ये आपसे मिलने के लिये बाहर से आये हैं ।

(दूत द्वारा भारमल्ल का अभिवादन)

भारमल्ल—(स्मितिपूर्वक अभिवादन का प्रत्युत्तर देते हुए) कहिये, आपका शुभागमन कहां से हुआ ?

दूत—श्रीमान् ! मैं अभी चित्तौड़ से चला आ रहा हूं, वहां के महाराणा उदय सिंह ने मुझे आपकी सेवा में भेजा है। यदि कोई बाधा न हो तो मैं अपने आने का उद्देश्य आपसे निवेदन करूं।

भारमल्ल—निस्संकोच कहिये, यहां किसी अनिष्ट की सम्भावना नहीं।

दूत—श्रीमान् ! आपको विदित ही है कि चित्तौड़ राज्य का गौरव सदा शत्रुओं को खटकता रहता है और वे आये दिन उस पर आक्रमण करते रहते हैं। प्रायः सभी दुर्ग अपनी सुरक्षा के लिये वीरों को मौन निमन्त्रण दे रहे हैं। रणथम्भौर दुर्ग की सुरक्षा भी दुःसाध्य हो रही है। इसी कारण चित्तौड़-नरेश ने रणथम्भौर के दुर्ग-रक्षक के पद पर प्रतिष्ठित करने के लिये आपको आमन्त्रित किया है।

भारमल्ल—बन्धु ! महाराणा की इस गुणग्राहिता के लिये मैं आभारी हूं। पर यह नगर और यहां के प्रेमी परिचितों को छोड़ अन्यत्र जाने की इच्छा नहीं होती।

दूत—यह बाधा स्वाभाविक है, चिर सहवास से मोह प्रबल हो ही जाता है। पर कर्मशील मोह की अपेक्षा कर्त्तव्य को ही अधिक महत्व देते हैं।

भारमल्ल—वस्तुतः मोह की अपेक्षा कर्त्तव्य विशेष आदरणीय है, इसके अतिरिक्त चित्तौड़ के महाराणा के आदेश की अवहेलना भी

भामाशाह

नहीं की जा सकती । अतः मैं शीघ्र ही सपरिवार रणथम्भौर पहुंचने का प्रयत्न करूंगा ।

दूत—साधुवाद ! इस स्वीकृति से मेरे आने का प्रयोजन सफल हो गया, अब मैं चलता हूं । वहां आपके निवास आदि की सभी व्यवस्था कर रखूंगा ।

भारमल्ल—आप मेरी ओर से निश्चिन्त हो कर जाइये । आज से ठीक एक पक्ष उपरान्त आप मुझे रणथम्भौर में ही पायेंगे ।

पटाक्षेप

अङ्क २

दृश्य १

स्थान—अलवर में भोमा नाहटा की गृह-वाटिका

समय—सन्ध्या ।

(एक ओर से पूर्वीय वेष भूषा से अलंकृत, वीणा-धारिणी अलका सुन्दरी का आगमन और अशोक वृक्ष के नीचे बैठ वीणा के तार भङ्कृत करते हुए स्वर-आलापन)

गीत

मधु-ऋतु का सुख मधुर-मिलन में ।

पिकी आम्र कोरक से लिपटी,

गुँजा रही यह गान गगन में ।

मधु-ऋतु का सुख मधुर-मिलन में ॥

मादक मधु-रस-कण कण-कण को
 पिला रही मधु ऋतु-मधुबाला ।
 डाल रही मुग्धा - मादकता,
 जन जन के मन पर वरमाला ॥
 औ' अनङ्ग भी अङ्ग अङ्ग में,
 भर उमङ्ग छाया तन-मन में ।
 मधु ऋतु का सुख मधुर मिलन में ॥

अनायास नव राग छेड़ती,
 तरुण - तरुणियों की हृदयीणा ।
 और अपाठित भी पारंगत,
 होती मन की प्रकृति प्रवीणा ॥

प्रिय की रूप - सुधा की तृष्णा,
 जगती आतुर तृषित नयन में ।
 मधु ऋतु का सुख मधुर मिलन में ॥

(सहसा ही भोमा नाइटों का आगमन, पति को सामने देख अलकासुंदरी
 का मौनावलम्बन)

भोमा—(निकट आकर) प्रिये ! मेरे आते ही तुम्हारा गान क्यों
 रुक गया ? क्या तुम्हारा संगीतामृत पाने का मैं अधिकारी नहीं हूँ ?

अलका०—अवश्य हैं नाथ ! पर आपको अनुरंजित करने योग्य
 संगीत कला का ज्ञान मुझे नहीं । एकाकीपन के कष्ट से मुक्ति पाने के
 लिये ही मैं वीणा से क्रीड़ा करने लगी थी ।

भोमा—(किंचित् विस्मय से) तुम्हारी वीणा से क्रीड़ा तो स्वाभा-
 विक है, पर एकाकीपन क्यों ? क्या मनो गृह में नहीं है ?

अलका०—नहीं, वह अपनी सहचरियों के साथ 'फूल डोल'^१ का उत्सव मनाने 'प्रमोद वन' गयी है। आती ही होगी।

(इसी क्षण वक्षस्थल में चमेली की माला, कणों में केतकी के कर्णफूल, ललाट पर बेला का बेंदा और भुजाओं में मालती के भुजबन्धों से अलंकृत किशोरी मनोरमा का प्रवेश)

भोमा—आ गयी मनो ! पर तूने इतना विलम्ब कहां लगाया ?

मनो०—कहीं नहीं पितृवर ! प्रमोद वन में ही फूलडोल के उत्सव में समय का ध्यान नहीं रहा।

भोमा—क्या आज का समारोह इतना लुभावना था ?

मनो०—निस्सन्देह तात !

भोमा—(उत्सुकता से) यदि ऐसा है तो संक्षेप में मुझे भी वहां का वर्णन सुना।

मनो०—सुनिये, आज का फूलडोल पर्व 'यथा नाम तथा गुणाः' था, सारे प्रमोद वन में सुमनों का सागर-सा ही उमड़ पड़ा था। अनेकों किशोर कुसुमों के ही किरीट और कुसुमों के ही कंठहार धारण कर कमनीय कानन-कुमारों-सी क्रीड़ा कर रहे थे और अनेकों किशोरियां भी कुसुमों के कण्ठहार कर्णफूल आदि अलंकारों से शिख से नख तक अलंकृत कानन-कुमारियों-सी किलकारियां भर रही थीं। कोई रसाल की डाल पर हिंडोला झूल मलहार गाती थी, कोई स्वयं वंशीधर श्रीकृष्ण बन और सखी को राधा बना रास लीला का अभिनय करती थी। कोई राधा बन मान करती थी और कोई कृष्ण बन

^१ मेवाड़ का एक प्रसिद्ध पर्व। टांड राजस्थान पृष्ठ सं० ७२६-७२७

उसे मनाती थी। इसी प्रकार प्रकृति की गोद में मनोविनोद का कार्यक्रम चलता रहा।

भोमा—समझ गया, आज तू दिवस भर की क्रीड़ा से श्रान्त हो गयी होगी, अतः जा, वस्त्र परिवर्तन कर विश्राम कर। हम अभी कुछ देर यहां बैठेंगे।

(मनोरमा का गमन)

अलका—नाथ ! अब मनोके अंग प्रत्यंगसे यौवनफूट चला है, अतः अब इसके कौमार्य को दाम्पत्य में परिवर्तित कर देना ही उचित है।

भोमा—तुम्हारी सम्मति यथोचित है प्रिये ! पर हमें वर खोजने का श्रम नहीं करना, कारण वह इसके जन्म से पूर्व ही निश्चित हो चुका था। अतः शीघ्रता की क्या आवश्यकता ?

अलका—इसी कारण मैं शीघ्रता की कह रही हूं कि कन्यादान का संकल्प चतुर्दश वर्ष पूर्व ही कर चुके, अब दान दी हुई वस्तु अधिक समय तक अपने समीप रखना ठीक नहीं।

भोमा—यदि तुम्हारा ऐसा ही आग्रह है तो मैं कल ही लग्नपत्रिका लिखवाने के लिये कुल पुरोहित से मुहूर्त निकलवाऊंगा।

अलका—शीघ्र ही मुहूर्त शोधन करवाइये, विलम्ब करने से लग्न की अवधि समाप्त हो जायेगी। फिर हमें आगामी वर्ष की लग्न की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।

भोमा—ऐसी शंका मत करो ! आगामी वर्ष नहीं, इसी वर्ष विवाहोत्सव सम्पन्न होगा। मैं आज ही शाह भारमल्ल की स्वीकृति पाने के लिये रणथम्भौर को पत्रिका लिख रहा हूं।

भामाशाह

अलका—(स्मितिपूर्वक) साधुवाद प्राणेश्वर ! आज नवीन वर्ष का प्रथम दिन मंगलदायक रहा । आपको यह सम्पूर्ण वर्ष कल्याणप्रद रहे ऐसी मेरी कामना है ।

भोमा—(मध्य में ही) और मेरे हृदय के भी ऐसे ही उद्गार स्वीकार करो । (कुछ सोच कर) पर तुमने नवीन वर्ष का प्रसंग लाकर मुझे ठीक स्मरण करा दिया, अन्यथा मैं भूल ही चुका था । आज नव वर्षारम्भ में तुम्हें उपहार स्वरूप देने के लिये मैं एक नवीन और बहुमूल्य वीणा लाया हूँ । चलो, चल कर दिखाऊँ ।

अलका—चलो ।

(दोनों का गमन)

पटाक्षेप

दृश्य २

स्थान—चित्तौड़ का एक उद्यान

समय—मदन त्रयोदशी की संध्या

(उद्यान के मध्य में अनंगदेव का मन्दिर, मन्दिर के वाम मार्ग से चमेली का द्वार केशपाश में लपेटे वीरा वीरांगना का आगमन)

वीरा—(अनंगदेव की मूर्ति के सम्मुख जानु टेक और करबद्ध हो) महादेव की अर्द्धनारीश्वरताके कारण ! राधा और कृष्ण की रासलीला के विधायक !! तपःपूत तपस्वियों की तपश्चर्या के विध्वंसक !!! विश्व-विजयी मदनदेव !!!! तुम धन्य हो और धन्य हैं वे तरुण तरुणियाँ, जो आज पर्व में अपनी उपासना से तुम्हारा वरदान प्राप्त कर रही

हैं। तुम्हारी यह अनन्य उपासिका भी आज एक कामना से शरण में आयी है। हे सर्वव्यापिन ! तुम्हें कुछ भी अगम्य नहीं, इसी विश्वास पर मैं अपनी मनोकामना अभिव्यक्त करती हूँ। (चारों ओर सशंक दृष्टि से देख कर) देवते ! मेरी लालसा है कि चित्तौड़ के राणा उदय सिंह अपना समस्त अनुराग मुझे अर्पित कर दें, मेरे संकेत मात्र पर वे अनुचित उचित सब कुछ करने को तत्पर रहें, मेरी इच्छाओं की पूर्ति को वे अपने जीवन का चरम लक्ष्य मानें।

(सहसा निकटवर्ती लतागृह से उदय सिंह का आगमन)

उदय सिंह—प्राणेश्वरी ! प्राप्त वस्तु की याचना करने की मूर्खता क्यों कर रही हो ?

(वीरा का मौनावलम्बन)

उदय सिंह—(स्नेहपूर्वक) प्रिये ! संसार की दृष्टि में चित्तौड़ का राणा स्वयं अपनी दृष्टि में तुम्हारा दास है, उसके प्रेम को सशंक हृदय से मत देखो। विश्वास मानो, मेरी अशेष स्नेहांजलि तुम्हारे चरणों की भेंट है।

वीरा—(मंदस्मिति से) विश्वास कैसे मानूँ ? मुझे प्रलोभन देने के लिये ही आप यह मिथ्या प्रेम-प्रदर्शन करते हैं। यदि वास्तव में आप मुझे अपने प्रेम का भाजन मानते, तो आपकी रूप-माधुरी मेरे नयनों के लिये दुर्लभ न होती।

उदय सिंह—हृदयेश्वरी ! तुम्हारा यह आरोप सर्वथा निराधार है। वास्तव में सदा तुम्हारी मोहिनी मूर्ति मेरे नयनों में भूलती रहती है, यही कारण है जो आज भी तुम्हारा अन्वेषण करता हुआ

भामाशाह

यहां तक आ पहुंचा हूं और लता-गृह में तुमसे अदृश्य रह तुम्हारी मदन-पूजा देखी है।

वीरा—आपके इस प्रमाण में भी असत्य झलकता है। निश्चय ही आप राज्य कार्यों से श्रान्त हो संध्याटन करने इधर उद्यान में आये होंगे, और कह रहे हैं कि तुम्हें खोजने आया हूं। यदि मेरा इतना ध्यान आपको होता तो मुझे विरह-वारिधि में छोड़ मन्त्रियों की मन्त्रणा-सरोवरी में मग्न न रहते।

उदय सिंह—मंत्रियों की मन्त्रणा में भाग लेनेसे अपनी उपेक्षा मत समझो। इस समय चित्तौड़ के दुर्ग पर यवन-पताका फहराने की लालसा अकबर के हृदय में उग्र हो रही है। किसी भी क्षण यहां विनाश का अवतरण हो सकता है, इसके पूर्व रक्षा की व्यवस्था का उत्तरदायित्व मुझ पर होने से ही मंत्रियों से मन्त्रणा करनी पड़ती है।

वीरा—आप व्यर्थ ही इस अनिष्ट की चिन्ता में घुल रहे हैं। भविष्य के भय से वर्तमान के सुख को ठुकराना विवेक नहीं। चित्तौड़ के राणा होकर चिन्ताके अधीन होना कायरता है। अतः निश्चिन्तता पूर्वक आमोद प्रमोद कर यौवन, प्रभुत्व और वैभव का उपयोग कीजिये। मैं अपने सौन्दर्य आदि समस्त नारी-गुणोंसे आपके आमोद की सहायिका बनने को तत्पर हूं।

उदयसिंह—निपुणे। तुम्हारी सम्मति मेरी आकांक्षा के अनुरूप ही है। अब मैं कभी मन्त्रियों के बागजाल में उलझ अपने भोगोंमें बाधा न पहुंचाऊंगा। सारा समय तुम्हारे साथ प्रेम-लीला में ही व्यतीत करूंगा।

वीरा—आपके इस निर्णय का मैं स्वागत करती हूँ। आप राज्य-कार्य की ओर से निश्चिन्त रहिये। यदि कभी आपत्ति की मेघमाला चित्तौड़-गगन पर मंडरायेगी, तो बरसने के पूर्व ही मैं पवन-रूपिनी बन उसे सीमा से बाहर कर दूंगी।

उदयसिंह—वीर हृदये ! तुम्हारे कोमल नारी हृदय में वीरता का यह सद्भाव देख मेरी ममता और भी प्रवल हो रही है। अनंगदेव की कृपा से केवल आज ही नहीं, आजन्म हमारे और तुम्हारे लिये मदन त्रयोदशी रहे।

वीरा --ऐसा ही होगा। अनङ्ग देवताका वर-भंडार अपने भक्तोंके लिए सदैव खुला रहता है। अब सूर्यास्त हो चुका है, विहग-मण्डली अपने नीड़ोंमें विश्राम करने जा चुकी है। चलिये, हम भी राजप्रासाद के शयनागार में उन्मुक्त विहार कर मदन त्रयोदशी सार्थक करें।

उदयसिंह—चलो।

(परस्पर कण्ठ में बाहु पाश डाल दोनों का गमन)

पटाक्षेप



दृश्य ३

स्थान—रणथम्भौर में भारमल्ल का निवास ।

समय—मध्याह्न ।

(चरखा कातने में लीन मोहिनी देवी, सामने से षोडश-वर्षीय ताराचन्द्र का आगमन)

ताराचन्द्र—मां ! आप यहां बैठी चरखा चला रही हैं और तात आपको जाने कब से खोज रहे हैं ?

मोहिनी—(चरखा चलाते हुए) खोज रहे हैं, क्यों ? क्या उन्हें मुझसे विशेष कार्य है ?

ताराचन्द्र—यह मुझे ठीक विदित नहीं, पर वे हस्त में एक पत्र-सा लिए आपको पूछ रहे थे ।

मोहिनी—समझ गयी, उन्हें भामा के विवाह सम्बन्ध में कुछ परामर्श करना होगा । (ताराचन्द्र से) जा देख, वे इस समय कहाँ हैं ? मैं अभी सूत समेट कर आयी ।

ताराचन्द्र—(कक्ष के द्वार तक जाकर) वे यहीं चले आ रहे हैं ।

(भारमल्ल का आगमन)

भारमल्ल —(मोहिनी देवी से) मैं समझता था, तुम निद्राधीन हो-ओगी । पर तुम इस विश्राम के समय भी चरखा चलाने में व्यस्त हो ।

मोहिनी—(चरखा एक ओर रखते हुए) लीजिये, इसे रखे देती हूं, अब बतलाइये यह किस स्नेहीजन की पत्रिका है ?

भारमल्ल—(पत्रिका मोहिनी की ओर बढ़ते हुए) लो, पढ़कर अपने प्रश्न का समाधान कर लो और इस सम्बन्ध में अपनी सम्मति दो ।

मोहिनी—(पढ़कर) इसमें मेरी सम्मति की क्या आवश्यकता ? आप अपनी स्वीकृति का पत्र आज ही लिख दीजिये ।

भारमल्ल—मेरा भी विचार ऐसा ही है, कारण विलासीनी वीरा के हास-विलास के दास राणा राज्यकार्य से उदास रहते हैं । ऐसी दशा में चाहे जब यवन-बाहिनी चित्तौड़ पर आक्रमण कर संकटकाल ला सकती है । उस समय, शान्तिके वातावरण में ही सम्पादनीय विवाह जैसा कार्य, सम्भव न होगा । पर अभी देश में सामान्यतया शान्ति है; अतः इससे निवृत्त हो लेना ही श्रेयस्कर है ।

मोहिनी—आप अराजकीय कार्यों में व्यस्त रहने के कारण गार्हस्थ कार्यों को भी राजनैतिक दृष्टिकोण से देखते हैं

भारमल्ल—(मध्य में ही) तुम भी गार्हस्थ दृष्टिकोण से विचार कर गृहस्वामिनी का कर्तव्य पूर्ण कर लो ।

मोहिनी—(स्मिति पूर्वक) करूंगी ही, देखिये । अब मैं गृह-कार्यों को करते करते श्रान्त हो गयी हूं, एकाकी कार्य करने में मेरा जी नहीं लगता । अपने इस भार की गुरुता घटाने के लिये भी बधू के रूप में एक सहायिका आवश्यक है । इस दृष्टिकोण से भी भामा का विवाह शीघ्र कर डालना उत्तम है ।

भारमल्ल—दृष्टिकोण हमारा और तुम्हारा भले ही भिन्न हो, पर निष्कर्ष एक ही है । अब केवल भामा का विचार ज्ञात करना शेष है ।

भामाशाह

मोहिनी—(व्यंग पूर्वक) भामा का विचार ज्ञात करना है अब !
तब नहीं ज्ञात किया जब दक्षिणावर्त शंख गृह में रख लिया ?

भारमल्ल—(स्मिति पूर्वक) तुम्हारी यह व्यंग-वृत्ति कभी तुम्हारा साथ नहीं छोड़ती । अस्तु ! मैं लिखे देता हूं कि आपकी निश्चित की हुई तिथि स्वीकार है । द्वारागमन के दिन वर-यात्रा अलवर पहुंच जायेगी ।

मोहिनी—लिख दीजिये । वैवाहिक सामग्रियों का संचयन भी शीघ्र कर डालिये । अवधि अंगुलियों पर गणनीय ही है ।

भारमल्ल—वैवाहिक सामग्रियों की चिन्ता तुम मत करो, सौभाग्य से कोई भी पदार्थ दुर्लभ नहीं । सारा आयोजन अत्यन्त भव्य और सुन्दर रूप में करूंगा ।

मोहिनी—करना ही पड़ेगा, यदि न करेंगे तो उपालम्भ भी सुनने को मिलेंगे ।

भारमल्ल—विश्वास मानो, ऐसा अवसर नहीं आ सकता । अब मैं शस्त्रागार का निरीक्षण करने जा रहा हूं । रात्रि में पुनः इस विषय पर विशेष विचार करेंगे । (गमन)

पटाक्षेप



दृश्य ४

स्थान—चित्तौड़ में विलासिनी वीरा का सुसज्जित विलास भवन
(एकाकिनी वीरा)

वीरा—(स्वगत) धन्य हूं मैं, और धन्य है मेरी रूपराशि, जो चित्तौड़ के राणा आज मेरी इच्छाओं के दास बने हैं। उन्हें लक्ष-लक्ष जनता के हित की उतनी चिंता नहीं, जितनी मेरी। नीति-निपुण मंत्रियों के हितकर सम्मति-वचन उतने मान्य नहीं, जितने मेरे अनुचित और अहितकर अनुरोध। दीन प्रजा के विलापों का भी उतना ध्यान नहीं, जितना मेरी साधारण उदासीनता का। वर्तमान समय में यद्यपि प्रत्येक क्षण राज्य-रक्षा की चिन्ता आवश्यक हो गयी है, पर वे मेरे यहां आनेके नित्य नियम का कभी उल्लंघन नहीं करते। (द्वार तक जाकर) पर आज अभी तक दर्शन नहीं दिये, कदाचित् किसी कार्य में व्यस्त हो गये होंगे। (कुछ रुककर) यह किसी के आने की पद-ध्वनि सी आ रही है, सम्भवतः वे ही होंगे।

(उदय सिंह का आगमन)

वीरा—(उठकर) आइये ! आइये प्राणवल्लभ !! आइये !!! आज अत्यधिक विलम्ब हो गया। मैं जाने कब से आपकी प्रतीक्षा में व्यग्र हो रही हूं।

उदय सिंह—हृदयेश्वरी ! अपने इस विलम्ब का मुझे स्वयं खेद है, पर विवशता थी। आज पुनः मंत्रियों ने मुझे घेर लिया और अपना वही चिरभ्यस्त राग अलापने लगे। तुम्हारी ओर से उदासीन रह

राज्यकार्यों में तल्लीन रहने की सम्मति देने लगे। पर मैं उनके वाग्जालों में नहीं उलझा, अविरत अनुरोध की अवहेलना कर, तुमसे मिलने चला आया।

वीरा—आपको ऐसा ही व्यवहार शोभा देता है, कारण आप चित्तौड़ के राणा हैं और मंत्री आपके सेवक ! उनका कर्तव्य है कि आपकी आज्ञा को न तु न च किये बिना शिरोधार्य करें। पर यह नहीं कि इसके विपरीत स्वयं आपको आदेश देने के अधिकारी बनें।

उदय सिंह—चलो, जाने दो, अब यह प्रसंग चला कर समय नष्ट मत करो। इस समय मेरा मनोरंजन करने के लिये कोई एक गीत सुनाओ, जिससे मैं तुम्हारे प्रेमालाप में भाग लेनेके योग्य बन सकूँ।

वीरा—(वीणा उठाते हुए) जैसा आराध्य देवता का आदेश होगा, यह दासी वैसा ही आचरण करेगी।

गीत

तुम मुझको, मैं तुमको कस लूँ।

तुम मम अधरों का रस लूटो,

मैं तब अधरों का मधुरस लूँ।

तुम मुझको, मैं तुमको कस लूँ।

प्रिय ! मम उरमें तुम छा जाओ,

औ छा जाऊँ मैं तब उर में।

यों तुम मेरी और तुम्हारी—

छवि मैं देखूँ हृदय मुकुट में ॥



भामाशाह

तुम मम अन्तर को छू हंस लो,
मैं तब अन्तर को छू हंस लूं ।
तुम मुझको, मैं तुमको कस लूं ॥

तुम निज मन की मुझसे कह लो,
मैं निज मन की तुमसे कह लूं ।
तुम मम यौवन नद में बह लो,
मैं तब यौवन नद में बह लूं ॥

पर तुम मम अभिलाष न मसलो,
औ मैं तब अभिलाष न मसलूं ।
तुम मुझको, मैं तुमको कस लूं ॥

उदय सिंह—साधुवाद ! इस गीत में प्रेममयी भावना का सुन्दर समावेश है । कर्णगत होते ही हृदय प्रेम-सागर में मग्न हो गया ।

वीरा—यह आपका अकारण स्नेहभाव है । कहिये, दुर्गों की व्यवस्था ठीक चल रही है न ?

उदय सिंह—ठीक ही होगी । मैं कभी दुर्गों का निरीक्षण करने नहीं जाता । पर सेवकों के कथनानुसार प्रबन्ध समुचित प्रतीत होता है ।

वीरा—जाने की आवश्यकता भी क्या ? आपने प्रत्येक दुर्गपर दुर्गरक्षक नियुक्त कर ही दिये हैं, वे सभी सुरक्षा के विषय में पूर्ण सावधान होंगे ।

उदय सिंह—सावधान सभी हैं, केवल इस समय रणथम्भौर के दुर्गरक्षक शाह भारमल्ल अपने पुत्र भामा का विवाह करने अलवर गये हैं.....

वीरा—(मध्य में ही) अर्थात् रणथम्भौर का दुर्गरक्षक शून्य है। इस कार्य के लिये उन्होंने कब तक का अवकाश ग्रहण किया है ?

उदय सिंह—उन्होंने कल दुर्ग में उपस्थित हो जाने का वचन दिया था और मुझे विश्वास है कि उनकी कर्त्तव्य-परायणता कल उन्हें रणथम्भौर पहुंचा देगी।

वीरा—आपका विश्वास असत्य नहीं हो सकता, उनकी कर्त्तव्य-शीलता के विषय में मैंने भी ऐसा ही सुना है और सुनती हूं कि जिस पुत्र का परिणयन करने वे गये हैं वह भी अत्यन्त निपुण और नीतिज्ञ है।

उदय सिंह—तुमने सत्य ही सुना है। वस्तुतः इस अल्पवय में भी उसमें असाधारण योग्यता है। उसके विषय में कई घटनाएं अत्यन्त विस्मयकारिणी सुनी गयी हैं।

वीरा—दो एक सुनने का अवसर मुझे भी दीजिये।

उदय सिंह—अब आज नहीं, अन्य किसी दिन सुनाऊंगा। आज तो जबसे तुमने वह मादक गान सुनाया है, तब से मेरी विचित्र दशा है। वाणी अवश्य तुमसे वार्तालाप कर रही है, पर अन्तरात्मा कल्पना-लोक में रमणीय दृश्य देख रही है। अब कल्पना को अनुभव में परिणित करने की लालसा है।

वीरा—यदि आपकी ऐसी मनोकामना है, तो चलिये शयनागार का स्वर्णपर्यंक भी प्रतीक्षा कर रहा होगा।

उदय सिंह—चलो हृदयेश्वरी !

(दोनों का गमन)

पटाक्षेप

दृश्य ५

स्थान —रणथम्भौर में भारमल्ल का भवन

(अपने शयनागार में भामाशाह की प्रतीक्षा करती हुई मनोरमा । क्षणभर उपरान्त भामाशाह का आगमन)

मनोरमा—(खड़े होकर) आ गये नाथ ? आज कल कार्याधिक्य से आपको प्रति दिन शयन करने में विलम्ब हो जाता है ।

भामाशाह—क्या करूँ प्रिये ? जिस दिन से विवाह कर आया हूँ, उसी दिन से राजनैतिक घटनाचक्र तीव्रगति से चल रहा है । चित्तौड़ की रंगभूमि में नित्य नये दृश्य दिखलायी पड़ते हैं, प्रायः पितृवर के साथ दुर्गरक्षा की समस्याएँ सुलभाने में व्यस्त रहना पड़ता है । इसी कारण एक भी दिन तुमसे निश्चिन्तता पूर्वक प्रेमालाप नहीं कर सका ।

मनोरमा—इसमें आपका क्या दोष ? यह समय ही प्रेमालाप का नहीं, देश की सुरक्षा का है । यदि देश-प्रेम की भावना से प्रेरित होकर ऐहिक सुखों की अवहेलना भी करनी पड़े तो यह कोई शोचनीय विषय नहीं ।

भामाशाह—(प्रेमपूर्वक) इस यौवन में तुम्हारा यह विवेक देख मुझे प्रसन्नता है । वास्तव में यह समय देश की सुरक्षा का है, पर आज जिसके हस्तों में शासन-सूत्र है, वही विलासिता के पंक में मग्न हो कर्तव्यविमुख बैठा है । अपनी अकर्मण्यता से ही वह गत युद्ध में यवनसम्राट् का बन्दी बना था ।

मनोरमा—निस्सन्देह ! यदि वह अपने मन्त्रियों के कथनानुसार आचरण करता तो इस आपत्ति से आक्रान्त न होता । किन्तु उसका हृदय अबलाओं-सा कायर है ।

भामाशाह

भामाशाह—अबलाओं-सा ही नहीं, वरन् उनसे भी कई गुना अधिक । देखो, कुलांगना भी नहीं—वारांगना वीरा अपने कौशल से यवनों को परास्त किया और राणा को कारागार से मुक्त करने में सफलता प्राप्त की । पर उस निर्लज्ज कायर को राजसभा में वीरा वारांगना की प्रशंसा करने में भी लज्जा का अनुभव नहीं हुआ ।

मनोरमा—यदि उसमें लज्जा ही होती तो वह युद्ध-भूमि में यवनों का बन्दी बनने की अपेक्षा मृत्यु का आलिंगन करना अधिक श्रेष्ठ समझता ।

भामाशाह—पर मृत्यु का आलिंगन करने योग्य उसका वक्ष नहीं रह गया । वीरा ने कोमल आलिङ्गनों से उसके वक्षस्थल की दृढ़ता अपहृत कर ली । यही कारण है कि क्रुद्ध राजपूतों ने कुचक्र रच कर उस मायाविनी वीराको परलोकवासिनी बना दिया है ।

मनोरमा—(विस्मयसे) क्या अब वीरा इस लोक में नहीं ?

भामाशाह—नहीं । सौन्दर्यकी प्रतिमा वीरा—राणा को पथभ्रष्ट कराने वाली वीरा की काया सामन्तों की कोपाग्नि में भस्म हो चुकी है । पर राणा की बन्धन-मुक्ति का कारण उसका अनुपम रण-कौशल अवश्य इतिहास की निधि बन गया है ।

मनोरमा—अब राणा को वीरा के इस महावियोग से सद्बुद्धि आ गयी होगी ?

भामाशाह—नहीं, अपने पतन की आधार-शिला के चकनाचूर हो जाने पर भी उनका विवेक नहीं जागा । आज भी वे मन्त्रियों से राजनीति न सीख विलासिता के स्वप्न देखने में मग्न हैं । यह उनकी अयोग्यता की पराकाष्ठा है ।

मनोरमा—आपसे यह सुन कर मुझे प्रतिभास होता है कि यदि राणा इसी प्रकार यवन सम्राट् की योजनाओं से अनभिज्ञ रहे तो एक दिन बप्पा रावल और राणा सांगा की प्रिय क्रीडास्थली चित्तौड़ नगरी शमसान बन जायेगी ।

भामाशाह—तुम्हारे अनुमान में सत्यता की भांकी है । राणा की अयोग्यता ने सामन्तों की राजभक्ति को कुचल दिया है और पारस्परिक वैमनस्य शत्रु की सफलता में सहायक बन रहा है ।

मनोरमा—(विस्मय से) तो क्या चित्तौड़की भूमि पर रणचण्डी का द्वितीय ताण्डव नृत्य होने की सम्भावना है ?

भामाशाह—अवश्य । गुप्तचर यवनवाहिनी के इधर आनेके सम्वाद ला रहे हैं; इस संग्राम में भी राणाकी पराजय अवश्यम्भावी है ।

मनोरमा—पराजय अनिवार्य है; पर यदि राणा रक्तकी एक बूंद रहने तक युद्धभूमि में कृपाण चलाते रहें तो उस पराजय को भी इतिहास-लेखक गौरवमय कहेंगे । अन्यथा इतिहास के भावी विद्यार्थी बप्पा रावल के इस वंशधर के नाम पर थूकेंगे ।

भामाशाह—हस्त के कङ्कण को देखने के लिये दर्पणकी आवश्यकता नहीं । निकट भविष्य में ही यवनों का आक्रमण इसका निर्णय कर देगा । वाद-विवाद व्यर्थ है ।

मनोरमा—(घड़ियाली की ध्वनि सुन कर) नाथ ! दुर्ग की घड़ियां दो प्रहर व्यतीत हो जानेकी सूचना दे रही हैं । अब शयन करना चाहिये ।

भामाशाह—जैसी तुम्हारी इच्छा ।

पटाक्षेप

दृश्य ६

स्थान—चित्तौड़ का दुर्ग

(चिन्तित मुद्रा में टहलते हुए एकाकी राणा उदय सिंह)

उदय सिंह—(निश्वास छोड़ते हुए स्वगत) हा ! यवन नरेश के कारागार की मनोवेदना से अभी मुक्ति भी नहीं मिल पायी कि पुनः यवन-वाहिनी मुझे बन्दी बनाने के लिये आ रही है । क्या इस बार भी यवन-सैनिक मेरे हस्तों में लौह-शृंखलाएं पहिनायेंगे ? नहीं, नहीं, मैं पराधीनता का आलिंगन नहीं करूंगा । नीतिकारों ने भी पराधीन जीवन से मृत्यु को श्रेष्ठतर माना है । पर क्या जीवन इतना व्यर्थ और निस्सार है कि लोकनिन्दा के भय से उसे मृत्यु की भेंट चढ़ा दी जाये ? नहीं, मैं कभी भी अपने जीवन को व्यर्थ युद्ध की ज्वाला में न होमूंगा । पर, अपनी जीवन-रक्षा का उपाय भी मुझे स्वयमेव करना होगा, कारण एक भी राजपूत सामन्त मेरी सहायता करने को प्रस्तुत नहीं । ऐसी दशामें क्षण भर का विलम्ब भी जीवनपर संकट ला सकता है ।

(एक गुप्तचर का आगमन)

उदय सिंह—कहो ! क्या समाचार है ? शीघ्र कहो ।

गुप्तचर—(अभिवादन कर) महाराणा ! यवन सम्राट् अकबर चित्तौड़ के निकट पहुंच चुके हैं । उनकी अनीकिनी पण्डौली से वशी जाने वाले राज मार्ग के उपरि भाग में ठहरी है..... ।

उदय सिंह—(मध्य में ही क्रोधपूर्वक) जाओ, जाओ, भाग जाओ ।

ऐसे भयंकर समाचार सुना कर मुझे भयभीत करने का प्रयास मत करो ।

(गुप्तचर का भय से पलायन)

उदय सिंह—(दीर्घ निःश्वास ले) अब शिर पर वज्र गिरने में विलम्ब नहीं । संभवतः एक दो दिन में ही यवन सैनिकों की दुनालियों से इस दुर्ग पर गोलियां बरसेंगी । उनकी उस दुर्दमनीय शक्ति के सामने ठहरने की क्षमता मुझमें नहीं । अब आत्म-रक्षा के प्रश्न का कैसे हल हो ? (कुछ सोच कर) दुर्ग छोड़ कर भाग जानेके सिवाय कोई रास्ता नहीं । अब मैं इसी उपाय का शरण लूँ । अभी रात्रि में ही गुप्त मार्ग से भाग कर चित्तौड़ की सीमा से बाहर पहुँच जाऊँ । पर, तस्कर के समान ही औरों की दृष्टि बचा कर यहाँ से भागूँ, अन्यथा सामन्तों की दृष्टि पड़ जाने पर प्राणों से हाथ धोना पड़ेगा । चलूँ अब अन्ध-कार भी भू-पटल पर छा गया है । देर करने से चन्द्रमा की किरणें बाधक होंगी ।

(शीघ्रता से पलायन)

पटाक्षेप



दृश्य ७

स्थान—चित्तौड़

(अस्त्र-शस्त्र सज्जित कुछ सामन्त)

एक—दुर्भाग्य से हमें ऐसा राणा मिला, जो मृत्यु के भय से अपनी राजधानी त्याग कर ही भाग गया। हे एकलिंग! अब कौन चित्तौड़ की रक्षा का भार अपने शिर लेगा?

द्वितीय—वीर-प्रसविनी मेवाड़-मेदिनी में जन्म लेने वाला प्रत्येक राजपूत इस भार को सोत्साह स्वीकार करेगा। जब सूर्य यामिनी के अंधकार के समक्ष ठहरने में असमर्थ हो अस्ताचल के अंचल में अपना मुख छिपा लेता है, तब अगणित मृत्तिका दीप अन्धकार को निगलने के लिये अपनी ज्योति-जिह्वाएं फैला देते हैं। ठीक इसी प्रकार आज राणा के भाग जाने पर यवन-दलको परास्त करने के लिये हम समस्त राजपूतों को कटिबद्ध होना है।

तृतीय—होना नहीं है, हैं। चित्तौड़ के नाम में ही ऐसी मोहिनी आकर्षण-शक्ति है कि केवल यहीं के नहीं, राजस्थान के भिन्न २ जनपदों से भी राजपूतगण शस्त्रास्त्रोंसे सज्जित हो यहां आ रहे हैं।

चतुर्थ—अभी २ वीरवर सहीदास चंदावत वंश की विशाल सेना के साथ आकर चित्तौड़ के प्रधान सूर्य-द्वार पर डट गये हैं।

पंचम—और मदेरियापति रावत दुंदा भी गंगावतों की सेना लेकर समरस्थली के समीप पहुंच चुके हैं।

प्रथम—(हर्षपूर्वक) वह देखिये, बिजौली के परमार और मादी के भालीपति भी सेना के साथ इधर ही आ रहे हैं ।

द्वितीय—और उधर भालौरपति शोनमड़ेका राव ईश्वरदास राठौर, कर्मचन्द कछवाहा और ग्वालियर के तुवरराव आदि भी आ पहुँचे ।

तृतीय—(प्रसन्न होकर) बस, अब हमारी विजय में सन्देह नहीं, हम प्राणों को करतल पर रख कर यवनों से संग्राम करेंगे । जबतक एक भी राजपूत की देह में प्राण रहेंगे, चित्तौड़ की पवित्र भूमि यवनों के चरण-स्पर्श से कलंकित न होगी ।

चतुर्थ—आओ, हम सब राष्ट्र-यज्ञ में प्राणों की आहुति देनेके पूर्व अन्तिम बार मातृभूमि की बन्दना कर लें ।

(कोष से खड़ग निकाल उच्च स्वर से गान)

जननि ! अशीष दान दो ।

स्वदेश स्वाभिमान दो ॥

अजेयता अखण्ड दो,

प्रहार बल प्रचण्ड दो,

प्रबुद्ध युद्ध नीति दो,

विशुद्ध युद्ध रीति दो,

समर कला महान दो ।

जननि ! अशीष दान दो ॥

न एक भी हताश हो,

न शौर्य का विनाश हो,

भामाशाह

न जय-वधू निराश हो,
न व्यर्थ यह प्रयास हो,

उठा स्वहस्त त्राण दो ।
जननि ! अशीष दान दो ॥

(गाते हुए प्रस्थान)

पटाक्षेप

दृश्य ८

स्थान—रणथम्भौर का दुर्ग

(भारमल्ल, भामाशाह और ताराचन्द्र)

भारमल्ल—भामा ! देखा, इस बारका राजपूत-यवन-संग्राम ! और
देखा राजपूत वीरों का रणप्रेम !

भामाशाह—देखा, हर्ष और विस्मय से पूर्ण दृष्टि से देखा; और
देखी विदनौर के राजा जयमल तथा कैलवाड़े के स्वामी षोडशवर्षीय
पत्ते की विस्मयकारिणी वीरता ।

ताराचन्द्र—वस्तुतः उन दोनों महावीरों का महोत्सर्ग असाधारण
था । वीरता-प्रेमी तरुण युग-युग तक उनके नाम की माला जपेंगे,
राजपुत रमणियां सांध्यवर्तिका के समय उनका स्मरणकर सन्तान का
मंगल मनायेंगीं और कुल कामिनियां आटा पीसते समय उनके गौरव
गीत गायेंगी ।

भारमल्ल—ताराचन्द्र ! तुम्हारी भविष्यवाणी सत्य होकर रहेगी ।

वास्तव में उक्त दोनों वीरों की उपमा देने योग्य अन्य कोई वीर मुझे इतिहास के अंचल में नहीं मिला ।

भामाशाह—जब है ही नहीं, तो क्या मिले ? पर इसमें सन्देह नहीं कि इनकी कीर्ति का गुरु भार वहन करने में इतिहास को अवश्य कठिनता होगी ।

ताराचन्द्र—भ्राता ! आप दार्शनिक-सी चर्चा न कर सरलता अपनायें तो मुझे भी साथ देने में सुगमता होगी ।

भारमल्ल—सरल भाषा में हमारा कथन यह है कि सहस्रों राज-पूतों का रक्तदान भी विजयलक्ष्मी की प्रसन्नता के लिये पर्याप्त न हुआ । अमरावती-सी चित्तौड़पुरी भूत प्रेतों के ताण्डव नृत्य का स्थान बन गयी । स्वाधीनता और सनातन धर्म का अभेद्य दुर्ग अधर्मियों से छिन्न-भिन्न हो गया । गगनचुम्बी अट्टालिकाओं के शिखर धूल में मिल गये ।

भामाशाह—निस्सन्देह वहां की दशा इससे भी अधिक दारुण है । उस निस्सीम दुर्दशा को शब्दों की सीमा में नहीं बांधा जा सकता ।

ताराचन्द्र—सुनते हैं कि नृशंस अकबर दुर्गद्वार के विशाल पटह, चतुर्भुजा देवी के मन्दिर के बहुमूल्य दीपवृक्ष और सिंहद्वार के दर्शनीय कपाट भी अपने साथ लेता गया है ।

भारमल्ल—ले गया होगा । यहाँ का वैभव ही इतना लुभावना है कि उसे अपने अधिकार में करने की आकांक्षा सहृदयता और शिल्पानुराग पर भी कुठाराघात कर देती है ।

भामाशाह—अकबर की बर्बरतासे विगत-वैभव चित्तौड़ अब जाने

भामाशाह

कब वैभव-सम्पन्न होंगे ? जाने कब उसके निष्प्राण सौंदर्यमें प्राण-प्रतिष्ठा होगी ?

ताराचन्द्र—अब उसके उद्धार का स्वप्न देखना व्यर्थ है । जब उद्धारकर्ता ही इस विनाश का कारण है तो फिर किससे उद्धार की आशा की जा सकती है ?

भारमल्ल—वर्तमान राणा से तो कोई आशा नहीं । पर सम्भव है कोई भावी वंशधर अपने पूर्वजों की इस प्रिय नगरी के पुनरुद्धारकी ओर ध्यान दे ।

(एक दूत का आगमन और भारमल्ल के हस्त में पत्र देकर गमन, भारमल्ल का पत्र-पठन)

भामाशाह —(उत्सुकता पूर्वक) पितृवर ! यह पत्र किसका है ?

भारमल्ल—यह पत्र हमारे महाराणा उदयसिंह का है ।

भामाशाह - (विस्मय से) वे इस समय कहां हैं ? मुझे उनकी दशा जानने की उत्कंठा है ।

भारमल्ल—दशा कुछ मत पूछो । वे यहां से भाग कर राजापिप्ली नामक वनमें कष्टपूर्वक दिन व्यतीत करते रहे । अब वहांसे गिलहोट नामक स्थान में चले गये हैं और एक नवीन नगर बसा रहे हैं ।

भामाशाह—पूर्वजों की पुण्य नगरी को श्मसान बनाकर नये नगर का सृजन करना कहां की बुद्धिमत्ता है ? पर इस पत्र में उन्होंने आपको क्या लिखा है ?

भारमल्ल—इस पत्र द्वारा उन्होंने मुझे अपने नवीन नगर में आमन्त्रित किया है, अब मुझे वहां शीघ्र ही पहुंचना पड़ेगा ।

ताराचन्द्र—क्या आपको उस कायरसे मिलने में ग्लानि न होगी ?

भारमल्ल—इसमें ग्लानि क्या ? हमें कायरता से घृणा करनी चाहिये, कायर से नहीं ।

ताराचन्द्र—पर इससे भी आदर्शवादिता को आघात ही पहुंचेगा ।

भारमल्ल—ताराचन्द्र ! तुममें अभी सांसारिक अनुभव का अभाव है, इसी कारण आदर्शवाद के लोकमें विचरते रहते हो । पर आदर्शों के लोक में विचरण करने वाले प्राणी संसार के लिये विशेष उपयोगी नहीं होते । हमें लोक-नीति और आदर्शवाद का समन्वय करते हुए कार्य करना है । इसीमें हमारा और देश का कल्याण होगा ।

भामाशाह—(ताराचन्द्र से) पूज्य श्री के विचार सुलभे हुए हैं, हमें भी उनकी शिक्षा के अनुसार ही जीवन का ध्येय निर्मित करना चाहिये ।

भारमल्ल—अब मुझे कल राणा के समीप जाना है । अतः चलकर आवश्यक सामग्री की व्यवस्था करो ।

(सबका गमन)

पटाक्षेप



दृश्य ६

स्थान—नवनिर्मित उदयपुर ।

(उदय सागर पर पर्यटन करते हुए उदयसिंह और भारमल्ल)

उदयसिंह—भारमल्ल ! कदाचित् आपको ज्ञात न होगा कि यह वही स्थान है जहां चित्तौड़ विजय के पूर्व हमारे पूर्वज बप्पा रावलने अज्ञात वास किया था ?

भारमल्ल—ज्ञात है राणा ! पूर्वजों की रक्षाभूमि होने के ही कारण इस स्थान के प्रति आपकी ममता का स्रोत उमड़ पड़ा है ।

उदयसिंह --वस्तुतः मुझे अरावली की शैल माला से वेष्टित यह स्थान अत्यन्त प्रिय प्रतीत हुआ, तभी तो मैंने इस पर्वतीय उपत्यका के मध्य में उदय-सागर निर्मित कराया ।

भारमल्ल—उदय सागर के निर्माण से यह स्थान प्रत्येक मेवाड़ के यात्री के लिये दर्शनीय हो गया था और अब गिरिव्रज के शिखर देश में यह नव चौकी भवन बन जाने से इसकी दर्शनीयता अधिक बढ़ गयी है ।

उदय सिंह—इसके अतिरिक्त इस भवन में चारों ओर निर्मित ये अट्टालिकाएं भी सौन्दर्य में वृद्धि कर रही हैं । अधिकांश नागरिकों ने भी अपने अपने भवन यहीं बना लिये हैं । इस प्रकार यह निर्जन प्रदेश एक सुन्दर नगर के रूप में परिवर्तित हो गया है ।

भारमल्ल—यह आपकी परिष्कृत रुचि का ही परिणाम है, अन्यथा कौन जानता था कि यह निर्जन प्रांत जनाकीर्ण नगरका रूप ले लेगा ?

उदयसिंह—भगवान एकलिंग की कृपा से मनोरथ सफल हो गया । इस नगर का नाम मैंने उदयपुर रखा है और चित्तौड़ के स्थान पर इसे ही अपने राज्य की राजधानी बना रहा हूं । कल एक विशाल समारोह का आयोजन है । जिसमें अधिक से अधिक नागरिकों और सामन्तों के उपस्थित होने की सम्भावना है । इसी समारोह में अपनी नवीन घोषणाएं प्रजा को श्रवण कराऊंगा ।

भारमल्ल—आपका यह कार्यक्रम अत्यन्त सुन्दर है । मेरे योग्य यदि कोई सेवा कार्य हो तो आज्ञा दें ।

उदय सिंह—अभी नहीं, इसे कल प्रभात में विदित कराऊंगा । इस समय केवल कुछ परामर्श करना है, जो सर्वश्राव्य नहीं । अतः आइये उस ओर एकान्त में चलें ।

भारमल्ल—चलिये ।

पटाक्षेप

दृश्य १०

स्थान—उदयपुर का सभा भवन ।

(मध्य में शून्य राज्य सिंहासन, सिंहासन के समक्ष अन्य ओर मन्द स्वर में वार्तालाप करते हुए राजपूत सामन्त)

प्रथम—कितने अल्प समय में हमारे राणा ने इतना सुन्दर नगर निर्मित करा लिया ।

द्वितीय—यह कोई विस्मय का विषय नहीं, हमारे राणा भले ही रणशूर न हों पर हैं तो राजा ही ।

भामाशाह

तृतीय—और राजा होने के नाते वे बिना राज्य बनाये रह भी नहीं सकते थे ।

चतुर्थ—तभी तो इस उदयपुर का निर्माण कराया है ।

पंचम—सम्भवतः अब वे पुनः राज्य-कार्य व्यवस्थित रूप से चलायेंगे ।

प्रथम—आज के इस आयोजन से उनकी इच्छा कुछ ऐसी ही प्रतीत होती है ।

द्वितीय—इसमें सन्देह ही क्या ? राज्यकार्य संचालन के अभावमें राजा की शोभा ही नहीं रहती ।

तृतीय—उन्हें इसमें असुविधा भी नहीं होगी, सारे साधन सुलभ ही हैं ।

चतुर्थ—पर राज्य का प्रमुख अंग मंत्री कोई भी नहीं, जो थे वे सभी अपने प्राण युद्ध वेदी पर अर्पित कर चुके हैं ।

पंचम—मन्त्री के अभाव की पूर्ति भी आवश्यक है, सम्भवतः आज अन्य घोषणाओं के साथ राणा मन्त्री की भी घोषणा करें ।

प्रथम—(जिज्ञासा पूर्वक) पर इस पद के लिये उन्होंने किसे निर्वाचित किया है ?

द्वितीय—यह अभी तक विदित नहीं हो सका ।

तृतीय—(नेपथ्य की ओर देखकर) सावधान ! महाराणा पधार रहे हैं ।

(सबका मौन, भारमल्ल के साथ महाराणा का आकर आसन ग्रहण)

उदय सिंह—(खड़े होकर) सामन्तो और प्रजागण ! चित्तौड़ के

गत-विभव हो जाने से ही मुझे यह नगर बसाने की आवश्यकता प्रतीत हुई। आज से यही उदयपुर मेरे राज्य की राजधानी रहेगा। मैं भी यहीं व्यवस्थित रूप से रह कर राज्य-संचालन करूंगा। अतः एव अपने प्रधान सहायक के रूप में शाह भारमल्ल को मन्त्री पद पर घोषित करता हूं। वे आकर मेवाड़ राज्य के प्रतिष्ठा की शपथ ग्रहण करें।

भारमल्ल—(खड़े होकर नतशिर हो) मैं अपने आराध्यदेव की शपथ पूर्वक प्रण करता हूं कि मेवाड़-राज्य मेरी समस्त श्रद्धा का केन्द्र बिन्दु होगा एवं मैं तन-मन-धन से इसकी सेवा के लिये सदैव प्रयत्नशील रहूंगा।

(दर्शकों द्वारा करतलध्वनि)

उदय सिंह—शाह भारमल्ल की इस प्रतिज्ञा से मुझे प्रसन्नता है। इन्हें मंत्रिपद पर प्रतिष्ठित करते हुए मैं यह भी घोषणा करता हूं कि यदि ये अपना उत्तरदायित्व योग्यता पूर्वक निर्वाह करें, तो मेरे भावी वंशज भी इनके वंशधरों को प्रधान के पद पर नियुक्त करेंगे। (भारमल्ल से) आइये। यह राजमुद्रा स्वीकार कीजिये।

(भारमल्ल का उठ कर विनय पूर्वक मुद्रा स्वीकार और दर्शकों की करतलध्वनि)

पटाक्षेप

अङ्क ३

दृश्य १

(प्रेत-भू के भयंकर वातावरण में धू-धू कर जलती हुई उदयसिंह की चिता, चिता से कुछ दूरी पर मन्द स्वर में गुप्त परामर्श करते हुए कुछ सामन्त)

एक—ओह ! राणा जिस शरीर के मोह में पड़ कर क्षात्र धर्म की अवहेलना करते रहे, आज उनका वही शरीर चिताग्नि में भस्म हो रहा है । विलास की जिन सामग्रियों को एकत्रित करने में उन्होंने जीवन व्यतीत कर दिया, उनमेंसे वे एक भी अपने संग न ले जा सके ।

द्वितीय—पर हमारे राणा ने वीर-कुल में जन्म लेकर भी कर्मवीर का धर्म नहीं निबाहा, जीवन के अन्तिम क्षणों में भी अपनी अधर्मता का एक प्रमाण और छोड़ गये ।

तृतीय—वास्तव में उन्होंने सनातन उत्तराधिकार विधिका उल्लंघन कर गृह-कलह का बीजारोपण ही किया है ।

चतुर्थ—और वह बीज भी द्रुतगति से वृक्ष का रूप धारण कर रहा है ।

पंचम—ज्ञात हुआ है कि प्रताप के मातुल भालौर राव प्रताप को मेवाड़ के राज्य पर अभिषिक्त करने के लिये प्रयत्नशील हैं ।

प्रथम—उनका यह प्रयत्न अनुचित नहीं, वीर राजकुमार प्रताप के रहते अयोग्य जगमल सिंहासन पर प्रतिष्ठित हो, यह अन्याय कोई भी न्यायप्रिय सहन नहीं कर सकता ।

द्वितीय—तभी तो भालौर राव इस अन्याय का प्रतिकार करने पर तुले हैं और उनका मनोरथ भी निष्फल न होगा । कारण प्रधान सामन्त चन्दावत कृष्णा भी उन्हीं के पक्ष में हैं ।

तृतीय—पर मृत राणा की अन्तिम इच्छा को ठुकरा कर कौन जगमल को सिंहासन से च्युत करेगा ?

चतुर्थ—उसे सिंहासन से च्युत करना कोई कठिन नहीं, सामन्त शेखर कृष्ण के लिये यह शिशु-क्रीड़ा तुल्य है ।

पंचम—इसके अतिरिक्त सामन्तों में से कोई जगमल का पक्षपाती नहीं, सभी प्रताप को सिंहासनारूढ़ देखने को लालायित हैं ।

प्रथम—प्रताप के गुणों का प्रताप ही ऐसा है, जो उसे सिंहासन का अधिकारी घोषित करता है ।

द्वितीय—(चिता की ओर देख कर) अब राणा का शव भस्मप्राय है, अतः नगर की ओर चलना चाहिये ।

तृतीय—(उत्सुकता से) चलिये, चल कर तिरस्कृत जगमल को मलीन और प्रताप को सिंहासनासीन देखें ।

(सबका प्रस्थान)

पटाक्षेप



दृश्य २

स्थान—उदयपुर का सभाभवन ।

(सिंहासन पर राणा प्रताप सिंह और उनके समक्ष भामाशाह, ताराचन्द्र तथा अन्य सभासद)

प्रताप सिंह—सामन्तों ! भगवान एकलिंग की कृपा और आप सब के सत्प्रयत्न से मुझे इस सिंहासन पर बैठने का सुयोग प्राप्त हुआ है, वस्तुतः मुझे शासन करने की नहीं, प्रिय मातृभूमि की सेवा करने की लालसा थी । सौभाग्यसे इस पद द्वारा अब मैं अपनी यह लालसा पूर्ण कर सकता हूँ ।

भामाशाह—महाराणा ! आपसे मेवाड़ के नागरिकों को ऐसी ही आशाएँ हैं, यही कारण है जो उसने आपके ही भाल को राजमुकुट से अलंकृत किया है ।

प्रताप सिंह—पर मुझे यह राजमुकुट पाने की प्रसन्नता नहीं, प्रसन्नता इस बात की है कि मुझे स्वर्ग से भी गौरवशालिनी जन्मभूमि की सेवा का सौभाग्य मिला है । पर यह सेवा-कार्य इतना कठिन है कि एकाकी इसे नहीं निभाया जा सकता । इसके लिये आप सबका सहयोग अपेक्षित होगा ।

भामाशाह—महाराणा ! राज्य का प्रत्येक नागरिक इसके लिये सदैव तत्पर रहेगा ।

प्रताप सिंह—(सहास्य) और आप भी ?

भामाशाह—अवश्य ।

प्रताप सिंह—(प्रसन्न मुद्रा में) भामाशाह ! आपके इस संक्षिप्त उत्तर से मेरा विस्तृत मनोरथ पूर्ण हो गया ।

भामाशाह—नरेन्द्र ! मैं अभी आपका अभिप्राय नहीं समझा ।

प्रताप सिंह—अभिप्राय स्पष्ट है । मुझे इस सेवा के अनुष्ठान में सर्वाधिक सहायता आपसे ही लेनी है ।

भामाशाह—(सविनय) पर मुझ साधारण व्यक्ति से आपको क्या सहायता मिल सकेगी ?

प्रताप सिंह—आप अपने को भले ही साधारण समझें, पर मैं ऐसा नहीं मानता । मुझे मानव-गुणों के परीक्षण का अभ्यास है और अवसर मेरे निर्णय को प्रमाणित कर देगा ।

भामाशाह—राजेन्द्र ! यदि आपकी इतनी कृपा मुझपर है तो मैं भी आप जैसे प्रतापी वीर-केशरी की सेवा को अपना अहोभाग्य मानता हूँ ।

प्रताप सिंह—सेवा मेरी नहीं, इस मेवाड़-मेदिनी की करनी है तथा यह सेवा आपको मेवाड़ के मन्त्री के रूप में करनी होगी ।

भामाशाह—पर मैं अपने निर्बल कन्धों से यह वृहद् भार कैसे वहन कर सकूंगा ?

प्रताप सिंह—जैसे सूर्य का सारथी अरुण ।

भामाशाह—पर वह चिरभ्यस्त है और मेरे लिये यह भार सर्वथा नवीन है ।

प्रताप सिंह—नवीन कैसे ? आपके पितृवर भी यही कार्य करते रहे हैं, कुल-क्रमागत कार्य नवीन नहीं कहा जा सकता । यह राज्य-

भामाशाह

मुद्रा स्वीकार कीजिये और आज से अपने को मेवाड़ का मन्त्री अनुभव करिये ।

भामाशाह—(नतमस्तक हो मुद्रा ग्रहण कर) महाराणा ! आपका आदेश पालन करना अपना कर्त्तव्य समझता हूं । आजसे मेरे जीवन का प्रत्येक क्षण मेवाड़ की उन्नति में व्यय होगा ।

प्रताप सिंह—तुम्हारी इस देशभक्ति से मुझे प्रसन्नता है । (ताराचन्द्र की ओर मुख कर) ताराचन्द्र ! आपको मैं गोड़वाड़ प्रदेश का पदाधिकारी बनाता हूं । आशा है आप भी अपने कर्त्तव्य-पालन में सजग रहेंगे ।

ताराचन्द्र—(सविनय) महाराणा । आपके आदेश को मैं वरदान मानता हूं । यथासम्भव शीघ्र ही अपने स्थान पर पहुंच कर कार्य-भार सम्भाल लूंगा ।

प्रताप सिंह—(उठते हुए) आप दोनों की इस स्वीकृति से मुझे प्रसन्नता है । आपसे यही आशा थी ।

(सबका गमन)

पटाक्षेप



दृश्य ३

स्थान—सादड़ी में ताराचन्द्र का सुसज्जित कक्ष ।

समय—संध्या ।

(ताराचन्द्र और नैनूराम)

ताराचन्द्र—नैनूराम ! जिस दिन से मुझे यहाँ स्थायी रूप से रहने की राजाज्ञा मिली है, उसी दिन से मैं अपने हृदय में पूर्ण स्वतंत्रता का अनुभव करने लगा हूँ ।

नैनूराम—क्यों स्वामिन् ? क्या वहाँ उदयपुर में आप पर भी कुछ बन्धन थे ।

ताराचन्द्र—बन्धन एक भी नहीं था, पर वहाँ ज्येष्ठ भ्राता भामाशाह के होने से मैं इच्छानुसार आनन्द नहीं लूट पाता था ।

नैनूराम—क्या आप पर उनका कठोर नियन्त्रण हर समय रहता था ?

ताराचन्द्र—नियन्त्रण तो नहीं था, पर मुझे ही उनके सामने रस राग करने में संकोच होता था ।

नैनूराम—क्या उन्हें संगीत आदि के प्रति विशेष आसक्ति नहीं ?

ताराचन्द्र—वस्तुतः उन्हें आसक्ति नहीं है और इसका कारण उनकी गम्भीर प्रकृति है । उन्हें हास्य-विनोद की अपेक्षा कर्तव्य अधिक प्रिय है, ऐसे तो विशुद्ध कलाओं का उन्हें असाधारण बोध है ।

नैनूराम—(मध्य में ही) और उसका उपयोग वे भगवान के कीर्तन आदि में करते होंगे ?

भामाशाह

ताराचन्द्र—तुम्हारा अनुमान सत्य है, वे भगवद्भक्ति और धार्मिक ग्रन्थों के अध्ययन में ही अपने अवकाश का समय व्यतीत कर देते हैं।

नैनूराम—पर कदाचित् आपको इनसे विशेष अभिरुचि नहीं ?

ताराचन्द्र—अभी नहीं है, कारण मैं भोग विलास को तारुण्य का और भगवद्भजन को वार्धक्य का कर्तव्य मानता हूं।

नैनूराम—आपकी विचारधारा से मैं भी सहमत हूं। मनोरंजन प्रेमी होने से ही आपने यहां आते ही इस प्रकार राजसी जीवन अपनाया है कि यहां के लक्षाधीशों के पुत्र भी चकित हो गये हैं। आपके समान यहां का कोई भी धनी मनोविनोदमें इतना व्यय नहीं करता। केवल आपही छह वेतनभोगी गायिकाएं संगीत सुनानेके लिये नियुक्त किये हैं, अन्य तो एक भी गायिका रखने का साहस नहीं करते।

ताराचन्द्र—न करें। समस्त वैभव परभव में भी साथ लेते जायें। पर मेरा सिद्धांत है कि यदि भाग्य से वैभव मिला है, तो स्वयं उसका उपयोग करो और उसके कुछ अंश का उपयोग अन्य को भी करने दो।

नैनूराम—धन्य हैं आपके विचार और आपकी उदारता !

ताराचन्द्र—नैनूराम ! वार्तालाप करते करते समय पर्याप्त हो गया, पर गायिकाएं आज अभी तक नहीं आयीं ?

नैनूराम—(नेपथ्य में नूपुरोंकी ध्वनि सुनकर) लीजिये, आपकी इच्छा होते ही वे आ पहुँची।

(वाद्य-वादकों के साथ गायिकाओं का आगमन)

ताराचन्द्र—नैनूराम ! आज कोई सुन्दर सा गीत सुनवाओ ।

नैनूराम—(प्रमुख गायिका से) केतकी ! कोई सुन्दरसा गीत गाओ जिससे स्वामी का मनोरंजन हो ।

(गायिकाओं द्वारा गीतारम्भ)

कौन रूपवान् नेत्रवान् निर्विकारी ?

प्रेम-जग का देव रूप, नेत्र हैं पुजारी ॥

अर्घ्य अनुरक्ति कली,

प्रीति पुष्प - अंजली,

प्राप्ति साध दीप-ज्योति, चित्त स्वर्ण-भारी ।

प्रेम जग का देव रूप, नेत्र हैं पुजारी ॥

मुग्धता ही भक्ति गान,

लीनता ही योग ध्यान,

मग्न इस उपासना में सर्व देहधारी ।

प्रेम जग का देव रूप, नेत्र हैं पुजारी ॥

ताराचन्द्र—यह गीत अत्यन्त भावपूर्ण है ।

नैनूराम—यदि आज्ञा हो तो ऐसे ही गीत और सुनवाऊँ ।

ताराचन्द्र—नहीं, अब आज नहीं, कल सुनूँगा ।

पटाक्षेप

दृश्य ४

स्थान—कुम्भलमेर का दुर्ग ।

समय—पूर्वाह्न ।

[राणा प्रताप सिंह और भामाशाह]

प्रताप सिंह—अमात्यवर ! आज भी भगवान् भास्कर ने अपना प्रताप नहीं त्यागा, लघु नक्षत्रों ने अपनी आभा नहीं त्यागी और अग्नि ने भी अपनी उष्णता का परित्याग नहीं किया । पर जाने क्यों क्षत्रिय आज अपना क्षात्र तेज खोकर निस्तेज हो रहे हैं ।

भामाशाह—नरेन्द्र ! क्षत्रिय निस्तेज नहीं, जो निस्तेज हैं, वे क्षत्रियेतर हैं । आपके समान वास्तविक क्षत्रिय का तेज आज भी इन्द्रलोक की चर्चा का विषय है ।

प्रताप सिंह—वस्तुतः पराश्रित नर-कीटों को क्षत्रिय संज्ञा देना 'क्षत्रिय' शब्द की अवमानना है । स्वर्ण-शृङ्खलाकी तृष्णासे श्वान बनने वाले सिंह घृणास्पद हैं । मुझे ऐसे कुलांगारों से कोई सहानुभूति नहीं ।

भामाशाह—ये पवित्र उद्गार आपके क्षत्रियत्व के अनुरूप ही हैं । यही कारण है जो आपने ऐसे यवन-भक्त नरेशों से अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर दिया है ।

प्रताप सिंह—सम्बन्ध-विच्छेद तो क्या ? मुझे उनका नामोच्चारण करने पर भी ग्लानि का अनुभव होता है, उनके दर्शनसे ही अपशकुन की कल्पना होती है ।

भामाशाह—यह स्वाभाविक है स्वामी ! मार्तण्ड विश्व-साम्राज्य त्याग भले ही अस्ताचल में निवास करने लगे, पर कलंकी चन्द्रमासे मिलना स्वीकार नहीं करता । तेजस्वियों की यही कुल-परम्परा है ।

(द्वारपाल का प्रवेश)

द्वारपाल—प्रजापाल ! मानसिंह का दूत द्वार पर उपस्थित है और आपसे मिलने की आज्ञा चाहता है ।

प्रताप सिंह—जाओ, उसे अविरोध यहां उपस्थित होने दो, किसी को भी निराश लौटाना मेरे स्वभाव के प्रतिकूल है ।

(द्वारपाल का गमन)

प्रताप सिंह—भामाशाह ! इस असमय में मानसिंह के दूत का आगमन मुझे रहस्यमय प्रतीत होता है ।

भामाशाह—हो सकता है नरेन्द्र ! कुटिलजन प्रत्येक कार्य किसी न किसी स्वार्थवश ही करते हैं ।

प्रताप सिंह—पर मुझसे मानसिंह का कौन-सा स्वार्थ सिद्ध हो सकता है ?

भामाशाह—स्वार्थ क्या ? पावन को भी पतित बनाना पतितों का व्यसन होता है । (पद ध्वनि सुनकर) अब दूत का आगमन हो रहा है, अतः सावधानी अपेक्षित है ।

(दूत का प्रवेश)

दूत—(अभिवादन कर) मेवाड़पते ! मुझे महाराजा मानसिंह ने आपकी सेवा में भेजा है ।

भामाशाह—यह द्वारपाल से विदित हो चुका है, आगमन का प्रयोजन-मात्र ज्ञातव्य है ।

भामाशाह

दूत—(भामाशाह की ओर पत्र बढ़ाते हुए) मेरे आगमन का प्रयोजन श्रीमान् के कर-कमलों में यह पत्र पहुँचाना है ।

भामाशाह—(पत्र लेकर स्वयं पढ़ते हुए) आप अतिथि-गृह में निवास कर मार्ग का श्रम दूर करें, संध्या से पूर्व पत्रोत्तर प्राप्त हो जायेगा ।

(दूत का गमन)

भामाशाह—(महाराणा की ओर पत्र बढ़ाते हुए) यह यवनभक्त मानसिंह का पत्र है ।

प्रतापसिंह—(घृणापूर्वक) मैं इसे लेकर क्या करूँगा ? अग्नि की ज्वाला को अर्पित कर दीजिये ।

भामाशाह—(शान्त स्वर से) पठन के पूर्व नष्ट करना समुचित नहीं, अतः केवल पढ़ लेने की मेरी प्रार्थना है ।

प्रतापसिंह—आपकी सम्मति का मैं विरोध नहीं करता, पर दुर-भिमानी मानका पत्र पढ़ना मेरे स्वाभिमान के विरुद्ध है । अतः आपही पढ़िये ।

भामाशाह—(स्मितिपूर्वक) यह विषयान मैं ही स्वीकार करूँ ? अस्तु, स्वामी की आज्ञा निर्विरोध पालना सेवक का धर्म है ।
(पत्रपठन)

महाराणा !

शोलापुर में प्राप्त विजयका सम्वाद आपको हर्षप्रद होगा । देहली पहुँचने के पूर्व मैं आपसे मिलने का इच्छुक हूँ । आशा है आप मुझे अपना अतिथि बना सकेंगे ।
—मानसिंह

प्रतापसिंह—(क्रोध पूर्वक) भामाशाह ! कुलकलंकी मानसिंह की यह धृष्टता ! वह मुझसे अपना सत्कार कराना चाहता है, पर यह सर्वथा असम्भव है । कदाचित् धेनु के शृंगों से दुग्धधार निकले, ज्वाला कुण्ड में प्रवेश करने से ग्रीष्म का सन्ताप दूर हो, पर मेरी निष्कलंक आत्मा उस कलंकी से मिलना स्वीकार नहीं कर सकती ।

भामाशाह—स्वाभिमानिन् ! आपकी यह घृणा निष्कारण नहीं, सकारण है । प्रत्येक स्वाभिमानिनी आत्मा ऐसे अवसर पर यही उद्गार प्रकट करेगी । पर अन्तिम निर्णय करने से पूर्व यह विचारणीय है कि मानसिंह मेवाड़ के अतिथि बन कर आ रहे हैं ।

प्रतापसिंह—(कुछ शान्त होकर) आपका यह संकेत महत्वपूर्ण है, मैं इसकी सर्वथा उपेक्षा नहीं कर सकता । मुझे अतिथि-सत्कार से विमुख हो बप्पा रावल के यश को मलीन नहीं करना । पर स्वाभिमान-रक्षा और अतिथि-सत्कार दोनों का निर्वाह कैसे सम्भव है ? इस समस्या का समाधान मैं आप पर ही अवलम्बित करता हूँ ।

भामाशाह—(क्षण भर सोच कर) मेरा मत है कि मानसिंह का स्वागत आप स्वयं न कर अन्य व्यक्तियों से करायें । इस आचरण से स्वाभिमान-रक्षा और अतिथि-सत्कार उभय उद्देश्य सुसाध्य होंगे ।

प्रतापसिंह—साधुवाद मंत्रीश्वर ! आपकी तत्कालिक विचार-शक्ति स्पृहणीय है । मैं इस सम्मति से सहमत हूँ ।

भामाशाह—पर यह व्यवस्था-भार कौन वहन कर सकेगा ?

प्रतापसिंह—मेरी दृष्टि में आपसे बढ़कर अन्य कोई इसके लिये उपयुक्त नहीं । कारण आप सुयोग्य मंत्री होने के साथ ही सुयोग्य व्यवस्थापक भी हैं ।

भामाशाह

भामाशाह—कृपासागर ! यह आपकी गुण-ग्राहकता है, अन्यथा मैं एक आज्ञापालक के अतिरिक्त कुछ भी नहीं । यह आज्ञा भी गत आज्ञाओं के तुल्य शिरोधार्य है ।

प्रतापसिंह—आपकी स्वीकृति मात्रसे मेरा चिन्ता-भार उतर गया । अब आप अपनी इच्छानुकूल स्वागत-सामग्री की व्यवस्था कर लें ।

भामाशाह—इस ओर से आप निश्चिन्त रहें । मेरी सावधानी स्वागत में कोई त्रुटि न रहने देगी । भोजन का प्रबन्ध भी राजकीय अतिथि के अनुरूप ही किया जायेगा पर(आकस्मिक मौन)

प्रतापसिंह—पर क्या ? अपूर्ण वाक्य को पूर्ण होने दीजिये ।

भामाशाह—पर भोजन के समय उनका साथ कौन निभायेगा ?

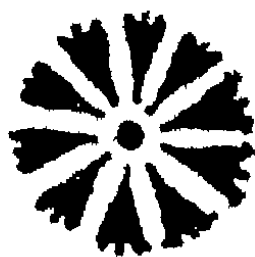
प्रतापसिंह—यह अवश्य विचारणीय है, क्या युवराज अमरसिंह उपयुक्त न होंगे ?

भामाशाह—उनसे अधिक और कौन उपयुक्त हो सकता है ? वे मुझे व्यवस्था करने में कुछ परामर्श भी दे सकेंगे, अतः उनसे मिल लेना सुविधाजनक होगा ।

प्रतापसिंह—मिल लीजिये, कोई हानि नहीं ।

(भामाशाह का आगमन)

पटाक्षेप



दृश्य ५

स्थान—उदय सागर का तट

समय—संध्या

(मानसिंह को ठहराने के स्थान का निरीक्षण करते हुए भामाशाह और अमर सिंह)

भामाशाह—युवराज ! मानसिंहको ठहराने के लिये यह स्थान सर्व सुन्दर रहा न ?

अमरसिंह—यह स्थान प्रकृति से ही रमणीय है, पर आपकी प्रबन्ध-चातुरी से इसका सौन्दर्य विशेष वृद्धिको प्राप्त हो गया है ।

भामाशाह—मेरी प्रबन्ध-चातुरी क्या ? पर इतना अवश्य है कि अतिथि की सुविधा के लिये समुचित व्यवस्था कर दी है ।

अमरसिंह—समुचित नहीं, असाधारण कहिये । यहांकी कलात्मक सज्जा भी नेत्रों का आकर्षण करने में सिद्धहस्त है ।

भामाशाह—यह और कुछ नहीं, महाराणा-प्रदत्त सुविधा का चमत्कार है ।

अमरसिंह—अस्तु, अब आपकी तालिका के अनुसार कितने कार्य अवशिष्ट रह गये ?

भामाशाह—चार । प्रथम कलश-कामिनियोंको प्रभात में यहां उपस्थित होने की सूचना भिजवाना; द्वितीय सूर्योदय से पूर्व आगमन-पथ पर गुलाब जल सिंचन का प्रबन्ध करना; तृतीय राजकीय वाद्य-वादकों को उपस्थित रहने के लिये सावधान करना..... ।

भामाशाह

अमरसिंह—(मध्य में ही) और चतुर्थ ?

भामाशाह—चतुर्थ, राजकीय उद्यान के मालाकार को आदेश दे सुरभित सुमनों के हार बनवाना ।

अमरसिंह—ये समस्त कार्य आप मुझ पर छोड़िये, कल मानसिंह के आनेके पूर्व ये कार्य आपको सम्पन्न दिखंगे ।

भामाशाह—साधुवाद ! आपकी इस कृपा से मेरा चिन्ता-भार न्यून हुआ ।

अमरसिंह—अब प्रायः सभी प्रबन्ध हो चुका है, अतः क्या अब चलूं ?

भामाशाह—कुछ क्षण और ठहरिये, अभी भोजन-व्यवस्था के विषय में भी विचार करना है ।

अमरसिंह—इसका मुझे स्मरण ही नहीं रहा, मानसिंह का भोजन शाकाहार रहेगा या शाकाहार-मांसाहार दोनों ?

भामाशाह—केवल शाकाहार, अहिंसा के अनुयायी मंत्री के तत्वा-बधान में मांसाहार की व्यवस्था असम्भव है ।

अमरसिंह—कोई हानि नहीं, शाकाहार की व्यवस्था सुसाध्य भी होती है ।

भामाशाह—पर यह प्रश्न सुसाध्य का नहीं, सिद्धान्त का है ।

अमरसिंह—(मध्य में ही) और सिद्धान्त आपके प्राण हैं ।

भामाशाह—ठीक लक्ष्य किया, अब प्रकृत विषय पर आइये ।

अमरसिंह—अरे ! यह प्रसंग कहां से कहां पहुंच गया ?

भामाशाह—मैं उसे यथास्थान पहुंचाये देता हूं, प्रीतिभोज के

भामाशाह

लिये कुछ मिष्टान्न और शाक आदि बनाने का आदेश राज-पाचक को दे ही दिया होगा ?

अमरसिंह—हां, यह मैं उससे कह चुका हूं। अभी जाकर पुनः सावधान किये देता हूं।

भामाशाह—अवश्य सावधान कीजिये, कारण भोजन के समय महाराणा के न रहने से मानसिंह का हृदय योंही जल उठेगा, इसपर भी अव्यवस्था देख उनका क्रोध सीमा का उल्लंघन कर जायेगा।

अमरसिंह—इसमें कोई सन्देह नहीं। और क्या व्यवस्था करनी है ?

भामाशाह—मेवे भंडार-गृह में हैं ही, ऋतु-सुलभ फल अवश्य अपेक्षित हैं पर वे कल ही उद्यान से मंगाये जा सकते हैं।

अमरसिंह—और क्या सामग्री आवश्यक होगी ?

भामाशाह—सब बतला रहा हूं। भोजन परोसनेके लिये वृहत् स्वर्ण-थाल, शाकादि के लिये रजत-चषक और फलों के लिये मणि-तारों की डलिया भी अपेक्षित होगी।

अमरसिंह—यह सब सामग्री भण्डार-गृह से निकलवा लूंगा, बस अब चलूं न ?

भामाशाह—चलिये, मैं भी चलता हूं। कल प्रभात में कुछ शीघ्र यहां उपस्थित हो जायेंगे। (गमन)

पटाक्षेप

भामाशाह

दृश्य ६

स्थान—उदयसागर

समय—सूर्योदय के उपरान्त

(बन्दनवारों से अलंकृत विश्रान्ति-गृह, शिर पर मंगल कलश लिये सुहागिन सुन्दरियां, वाद्य-वादक, कुछ सैनिक, राज्य पदाधिकारी, भामाशाह और अमरसिंह)

भामाशाह—कुमार ! आगमन का समय हो गया है, पर अभी तक पहुंचने की सूचना नहीं आयी ।

अमरसिंह—आ ही रही होगी महामात्य ! सम्भवतः मार्ग में अनुमानित समय से कुछ अधिक लग गया होगा ।

(दूत का आगमन)

दूत—(सविनय) महाराज मानसिंह का आगमन हो रहा है ।

(निस्तब्धता, स्वागत-वाद्यों की ध्वनि और मानसिंह का प्रवेश)

भामाशाह—(अमरसिंह से) कुमार ! आप पुष्पहार पहिनायें ।

अमरसिंह—(आगे बढ़कर द्वार पहिनाते हुए) जय एकलिंग ! आपका अभिनन्दन है !

मानसिंह—(प्रसन्न मुद्रा में) धन्यवाद ! कहिये कुशल हैं न ?
(चारों ओर देख कर) राणाजी के दर्शन नहीं हो रहे ?

भामाशाह—वे अभी नहीं पहुंच सके । चलिये, कुछ क्षण विश्राम कर मार्ग का श्रम दूर कीजिये । पश्चात् शेष वार्तालाप सुविधा से हो सकेगा ।

मानसिंह—जैसी आपकी इच्छा, मुझे भी इस समय विश्राम की आवश्यकता प्रतीत होती है ।

भामाशाह—आप इस एकान्त कक्ष में विश्राम कीजिये, यहां पर्याप्त शीतलता है ।

मानसिंह—ठीक है, यह स्थान सुन्दर होने के साथ मेरी रुचि के अनुरूप है । अब आप मेरे विषय में कोई चिन्ता न करें, मैं यहीं विश्राम कर रहा हूं ।

भामाशाह—(उपस्थित सज्जनों से) आप सब महानुभाव भी जायें, जिससे कोलाहल शान्त हो । (अमरसिंहसे) चलिये, हम भी चलें ।

(सब का गमन)

मानसिंह—(स्वगत) कितनी सुन्दर व्यवस्था है । मेवाड़-नरेश से इतना सम्मान पाने की आशा मुझे स्वप्न में भी न थी, पर आज का यह समारोह सूचित करता है कि परिस्थितियों ने राणा की विचार-धारा को परिवर्तित कर दिया है । आपत्तियों के भूचाल ने उनके सिद्धान्तों के सौध को ढा दिया है । अब कदाचित् उनके हृदय में भी अकबर की राजसभा में स्थान पाने की भावना जागृत हो उठी है, तभी तो उन्होंने मेरी आज किंचित् भी उपेक्षा नहीं की और मेरे स्वागत में अपने कोष का यथेष्ट उपयोग किया है । निस्सन्देह आज का यह आयोजन मेरी सफलता के लिये शुभ शकुन है ।

(नेपथ्य से गीत की ध्वनि)

महत् से कैसा लघु का मान ?

क्षणिक छवि के स्वामी खद्योत,

प्रखर रविकी छवि को पहिचान ।

महत् से कैसा लघु का मान ?

भामाशाह

अरे ! रवि अक्षय छवि का देव,
और तू एक तुच्छतम कीट ।
सोच तू ही क्या कीट समक्ष—
नमित हो सकता देव-किरीट ?
पहिन भी स्वर्ण-शृंगला श्वान,
कहीं सिंह से पाया सम्मान ?
महत् से कैसा लघु का मान ?
न जब तक हरता दिन नटराज,
निशा-गोपी का तिमिर-दुकूल ।
तभी तक उसके अंचल मध्य,
किलोलें कर ले मद से फूल ॥
पुनः तव छवि को सूर्य-प्रताप,
एक क्षण में कर देगा म्लान ।
महत् से कैसा लघु का मान ?

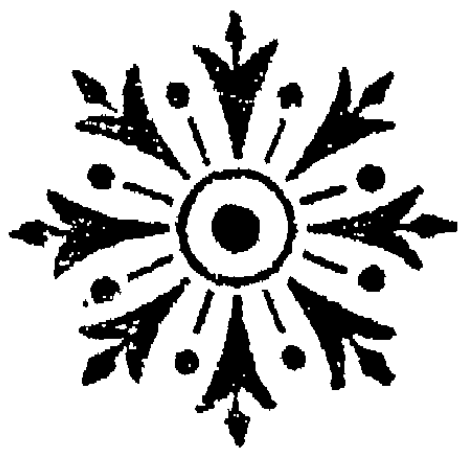
मानसिंह—(स्वगत) यह गीत गीत नहीं, मेरे स्वाभिमान पर
वज्र-प्रहार है, इसने मेरे क्षणभर पूर्व के विचार विद्युत्तरंग से विलीन
कर दिये । कोमलांगी कल्पना-कोकिला के पंख खोल उसे अनन्त
व्योम में अन्तर्धान कर दिया । (रुक कर) चलो अच्छा हुआ, जो
इस गीत ने समयसे पूर्व मुझे सचेत कर दिया । निश्चय ही पुष्पहार-
सा मोहक आज का यह स्वागत अपने अंचल में अपमान का नाग
छिपाये है, जो किसी भी क्षण फुफकार सकता है । अतः यहां के
वातावरण से, यहां के समीरण तक से मुझ सावधान रहना होगा ।

जाने कब अभ्यर्थना के परिधान में तिरस्कार के दर्शन हों। जो भी होना हो, हो। मानसिंह किसी से भयभीत होने का नहीं। वह दिल्लीश्वर अकबर को भी कठपुतली से अधिक महत्व नहीं देता। देखना है, कौन मरणेच्छु मुझे अपमानित करने का साहस करता है ? (अमर सिंह और भामाशाह को आते देख प्रसन्न मुद्रा में कुमार अमर सिंह से) आइये, कुमार ! आपकी व्यवस्था और उत्साह से मुझे अत्यन्त प्रसन्नता है। राणा का यह आतिथ्य मुझे चिरस्मरणीय रहेगा। (भामाशाह) आपका भी प्रबन्ध, चातुर्य-स्पृद्धा का विषय है। इस परिश्रम और सौजन्य के लिये मैं आपका प्रशंसक हूँ।

भामाशाह—महाराज ! ऐसे शब्द मेरे लिये शोभास्पद नहीं। हमने स्वामि-आज्ञा का ही पालन किया है और कुछ नहीं। अब भोजन की बेला है, अतः भोजनगृह में प्रवेश करने के लिये हमारा विनम्र अनुरोध है।

मानसिंह—चलिये, आपका अनुरोध टालनेकी क्षमता मुझमें नहीं।
(स्कन्ध पर चीनांशुक डाल भोजनार्थ गमन)

पटोक्षेप



भामाशाह

दृश्य ७

स्थान — भोजन-गृह

समय—मध्याह्न

(अमरसिंह और भामाशाह के साथ मानसिंह का प्रवेश)

भामाशाह—महाराज ! आसन पर विराजने की प्रार्थना है ।

मानसिंह—महाराणा की प्रतीक्षा कर लीजिये, ऐसी शीघ्रता ही क्या ?

भामाशाह—आप तो विराजिये ।

(मानसिंह का आसन ग्रहण और राजपाचक द्वारा दुग्ध तथा विभिन्न शाकों के पात्रों के चषकों और घृत से सुवासित मधुर मिष्टान्नों के रजतपात्रों से सज्जित स्वर्ण थाल का आनयन)

मानसिंह—(दो क्षण महाराणा की प्रतीक्षा कर) मंत्रिवर ! स्वर्ण-थाल में भोजन सामग्री सज्जित हो चुकी, पर राणा अभी तक नहीं पधारे ? उनकी अनुपस्थिति से यह आतिथ्य निष्प्राण-सा प्रतीत होता है । अतः इसमें प्राण-प्रतिष्ठा करने के लिये उनकी उपस्थिति अनिवार्य है और मेरा हृदय भी उनके साथ ही बैठ कर भोजन करने को उत्कण्ठित है ।

भामाशाह—महाराज ! आज अस्वस्थ होने से ही महाराणा स्वयं नहीं आ सके, पर उनके ज्येष्ठ पुत्र युवराज अमरसिंह आपकी सेवार्थ प्रस्तुत हैं ।

मानसिंह—(किंचित् क्रोध से) इससे क्या ? राणा के अभाव की पूर्ति इनसे किसी भी प्रकार संभव नहीं ।

अमरसिंह—(विनय से) महाराज ! मैं तन-मन-धन से आपके अनुकूल आचरण करूँगा । अतः दाजीराज* की अनुपस्थिति का विचार त्याग भोजन स्वीकार करें ।

मानसिंह—अनुकूल आचरण करने से क्या ? मैं इन मिष्टान्नों से उदर-गर्त भरने यहां नहीं आया, राणा का प्रेम पाने आया हूँ । यदि वह नहीं मिला तो अमृत भी विषवत् त्याज्य होगा ।

भामाशाह—(विनयपूर्वक) महाराज ! इतने रुष्ट होने की आवश्यकता नहीं, राणा और युवराज में कोई अन्तर नहीं । उदयकालीन दिवाकर भी प्रौढ़ दिवाकर के समान तम-नाश करने की क्षमता रखता है ।

मानसिंह—रखता है, पर इससे क्या ? मध्याह्न के दिवाकर के समान वह तेजस्वी नहीं होता । अतः राणा के रहते उनके स्थान की पूर्ति युवराज से असंभव है । पुण्डरीक से निस्सरित पराग से पुण्डरीक का कार्य नहीं लिया जा सकता ।

भामाशाह—आपका कथन कुछ अंशों में सत्य अवश्य है, पर महाराणा की अस्वस्थता ही उनकी अनुपस्थिति का कारण है—और कुछ नहीं ।

मानसिंह—मेरी आत्मा यह स्वीकार करने को तत्पर नहीं, अवश्य ही इसका कारण मेरे प्रति घृणा भाव है । अन्यथा प्रेमीजन चिता से भी प्रेत बन कर मिलने चले आते हैं ।

* 'दाजीराज' शब्द मेवाड़ के राजा व राजवंशी अपने बाप के लिये बोलते हैं । वीरविनोद पृ० १६४

भामाशाह

भामाशाह — प्रेत आ सकते हैं, पर मनुष्य नहीं। आपका सन्देह निराधार है, यदि इसका कारण घृणा भाव होता तो यह स्वागत-समारोह करने की आवश्यकता ही क्या थी ?

मानसिंह—(मध्य में ही) चतुर मंत्रिन् ! आप अपनी तर्कणाशक्ति से मुझे कितना ही भुलाने का प्रयत्न करें, पर मैं पंचवर्षीय बालक नहीं जो ये मिष्टान्न दिखलाने से रीझ जाऊँ। मुझे प्रेम चाहिये, वह भी युवराज से नहीं—राणा से—हिन्दू जाति के मुकुट से—मेवाड़ के निष्कलङ्क चन्द्र से।

भामाशाह—महाराज ! इस आकांक्षा की पूर्ति महाराणा की अस्वस्थता के कारण अत्यन्त कठिन है, अतः युवराज अमरसिंह के साथ भोजन कर हमारा आतिथ्य सफल करें।

मानसिंह—बुद्धिमान् मंत्रिन् ! इस अपमान को आतिथ्य कह कर आतिथ्य का महत्व न घटायें। मैं राणा से मिलने के लिये यह दीर्घ यात्रा कर यहां आया और वे भोजन के समय भी दर्शन न दें। यह अवहेलना आतिथ्य नहीं, आतिथ्य का भयंकर उपहास है।

अमरसिंह—(समय) महाराज ! इतने रुष्ट न हों, आप जैसा कहें, मैं वैसा ही करने को तत्पर हूँ।

मानसिंह—(उच्च स्वर से) युवराज ! तुम्हारे तत्पर होने से क्या ? राणा के तत्पर होने पर ही मेरी मनस्तुष्टि सम्भव है। अतः जाओ उनसे निवेदन करो कि मानसिंह आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। आपके पहुंचे बिना वे भोजन का एक कण भी स्पर्श करने को तत्पर नहीं।

अमरसिंह (जाते हुए) आप दो क्षण रुकें, मैं अभी दाजीराज का

उत्तर लेकर आ रहा हूं। (गमन, क्षणोपरान्त एकाकी पुनरागमन)

अमरसिंह—महाराज ! शिरोवेदना से पीड़ित होनेके कारण उन्होंने आने में असमर्थता प्रकट की है, कृपया भोजन स्वीकार कर हमारा आतिथ्य सफल करें।

मानसिंह फिर आतिथ्य ? क्या उन्माद हो गया है तुम्हें ? जो इसे आतिथ्य कहते हो ? (आसन से उठते हुए) राणा के बिना मुख में प्रास देना दूर, भोजन की थाली की ओर भी मानसिंह नहीं देख सकता ।

भामाशाह—महाराज । आपका यह क्रोध अकारण है, महाराणा की शिरोवेदना ही आपकी इच्छापूर्ति में बाधक है । अन्यथा आपको ये शब्द कहने का अवसर न आता ।

मानसिंह—(क्रोध से भृकुटियां टेढ़ी कर) भामाशाह ! यह शिरोवेदना नहीं, मुझे अपमानित करने के लिये शिरोवेदना का मिथ्या अभिनय है । उच्छिष्ट पर पलने वाला श्वान भी इतना अपमान सह भोजन की ओर दृष्टिपात नहीं कर सकता । फिर मेरे शरीर का तो प्रत्येक परमाणु स्वाभिमान से ही निर्मित है । अतः यह उपेक्षा सहना मेरी प्रकृति के सर्वथा विरुद्ध है । पर मैं अन्नदेवता का तिरस्कार नहीं करता और उसे मस्तक पर चढ़ाता हूं । (दो तीन तन्दुल कणों का शिरोवेष्टन में निक्षेपण) किन्तु प्रताप की शिरोवेदना के प्रति मुझे सम-वेदना है, अतः इसकी रामबाण औषधि लेने जाता हूं । इस औषधि का नाम सुनते ही प्रताप के शिर से शिरोवेदना का भूत उतर जायेगा । मेवाड़ की मेदिनी अपने ही लालों के मुण्डों की माला पहनेगी । यहां

भामाशाह

के कण-कण पर हमारी सेना का अधिकार होगा। राणा कहलाने वाले प्रताप की दशा रंक से भी दयनीय होगी। तब उन्हें ज्ञात होगा कि शिरोवेदनाके मिथ्या अभिनय की औषधि कितनी मूल्यमयी पड़ी।

(सहसा प्रतापसिंह का प्रवेश)

प्रतापसिंह—(दक्षिण चरण आगे कर और तर्जनी उठा कर) अकबर की कृपा पर पलने वाले श्वान ! सिंह को अपनी कन्दरा में सुप्त समझ क्यों व्यर्थ भोंक रहा है ? कदाचित् तू सोचता है कि यह गीदड़भभकी मेवाड़-केशरीके सिद्धान्तोंको भयभीतकर देगी ? पर ऐसा सोचना शुष्क रजकणों से तेल निकालने के समान मूर्खता है। यवनदास ! तेरे साथ भोजन कर मैं निष्कलंक कुल को कलंकित नहीं कर सकता। कुलांगार ! भोजन दूर, तेरा स्पर्शित जल ग्रहण करना भी प्रताप के सिद्धान्त-विरुद्ध है। यदि तुझे क्षुधावेदना सता रही है तो सामने रखे भोजन से उसकी शान्ति कर, कदाचित् बधना के जल की लालसा हो तो उसकी प्राप्ति यहां सम्भव नहीं और युद्ध का भय दिखाना अपने काल को ही निमन्त्रण देना है। यदि प्रताप के खड्ग से सुहाग रात मनाने को तेरी वक्षस्थली आतुर हो; तो प्रताप का खड्ग इस अवसर का सहर्ष स्वागत करेगा।

मानसिंह—(क्रोधावेग में) बस, चुप रहो, अधिक विष उगलना भोजन-गृह को ही रणभूमि बना देगा। विवाद करना वीर के लिये शोभास्पद नहीं। मैं इन सारे मिथ्यारोपों का उत्तर मांस की जिह्वा से नहीं, कृपाण की जिह्वा से दूंगा। रण-भू में हमारे सैनिकों द्वारा बन्दी होने पर तुम्हें मेरे ही चरणों पर गिरना पड़ेगा। तब ज्ञात होगा कि

मानसिंह का अपमान करना सुप्त सिंह के मुख में हस्त डालने के समान भयंकर है ।

प्रतापसिंह—वाह रे सिंह की खाल ओढ़ कर सिंह बनने वाले गर्दभ ! यदि तू मेरा अतिथि बन कर न आया होता, तो अभी तक मेरा खड्ग तेरा शीश उतार कर दोनों के विवाद का निर्णय कर चुका होता । पर यह नीति-विरुद्ध समझ तुझे निकल जाने का अवसर देता हूँ । अम्बर कुल के कलङ्क ! यहां तेरा स्वागत न कर सका; अतः युद्ध-स्थली में आतिथ्य करने का आश्वासन देता हूँ ।

मानसिंह—(क्रोध से) अभिमानी प्रताप ! क्या तूणीर में वाण नहीं रह गये, जो बागवाणों से प्रहार करते हो ? कायरों के इस शस्त्र का प्रयोग करने की आवश्यकता नहीं । मैं स्वयं प्रतिशोध की भावना लेकर मेवाड़-मेदिनी से बिदा लेता हूँ । अब अतिथि के रूप में नहीं, तुम्हारे काल के ही रूप में आऊंगा और तुम्हारे शोणित को अपने वक्ष में मल अपनी जलन को शान्त करूंगा । (गमनोद्यत)

एक सैनिक—(आगे बढ़ कर) जाओ ! जाओ !! पर पूर्ण न होने वाली प्रतिज्ञा क्यों करते हो ? यदि मृत्यु-मोहिनी का वरण करने के लिये अधिक आतुरता है, तो रण-मण्डप में ही सज-धज कर आना और साथ ही अपने भगिनीपति अकबर को लेते आना ।

मानसिंह—(लौट कर) उद्दण्ड प्रताप ! मैं अपने भोलेपन से तुम्हारे गृह आ गया हूँ, इसी कारण इन साधारण सैनिकों से भी मेरा अपमान कराते हो ? करा लो, करा लो, जब तक मैं यहां हूँ । पर स्मरण रहे, यह ऋण तुम्हें व्याज सहित चुकाना पड़ेगा । अतः संग्राम-यज्ञ

भामाशाह

मैं अपना सर्वस्व होम करने के लिये तत्पर हो जाओ, मेवाड़ के सिंहासन पर वज्र गिरने में विलम्ब नहीं। छल के दोष से बचने के लिये मैं आज ही सावधान किये जाता हूँ। (शीघ्रता से प्रस्थान)

प्रतापसिंह—(आवेश में) चला गया ! चला गया !! मेरे गृह को अपवित्र करने वाला मानसिंह चला गया !!! भामाशाह ! इस स्थान को खुदवा कर गंगाजल सिंचन कर पवित्र करवाओ। इन समस्त पात्रों को भूमि पर पटक-पटक कर चूर करवा दो। मानसिंह का स्पर्श करने वाले तुम सब स्नान कर यज्ञोपवीत बदल डालो। मैं भी ब्राह्मणों को सवत्सा गायें दान देकर उसका मुख देखने का प्रायश्चित्त करूंगा। (सामन्तों से) अब किसी भी क्षण युद्ध का ज्वालामुखी अपना मुख खोल सकता है। अतः युद्ध की रंगभूमि पर अपनी रण-कला का अभिनय करने के लिये सज्जित हो जाओ, मेवाड़ के सिंहासन पर दांत गड़ाने वाले भेड़ियों के दांत तोड़ने को कटिबद्ध बनो। मातृभूमि के चरणों पर प्राणों की पुष्पांजलि अर्पित करने को सन्नद्ध होओ।

सामन्तगण—मेवाड़ गौरव ! हम सब तत्पर हैं, विलम्ब है केवल आपकी आज्ञा का। फिर तो हममें एक एक शत शत यवनों के नाश के लिये पर्याप्त होगा। बप्पा रावल और राणा सांगा हमारा पराक्रम देख स्वर्गमें किलकारियां भरेंगे। आप विश्वास रखें, कि एक भी मेवाड़ी वीर के जीवित रहते मेवाड़ का सिंहासन विदेशियों के स्पर्श से कलंकित न होगा।

प्रतापसिंह—साधुवाद ! सामन्तो, साधुवाद !! ये उद्गार आप के

पौरुष के ही अनुरूप हैं । (कुछ रुक कर) आजकी अशोभन घटना से हृदय की उद्विग्नता अधिक बढ़ गयी है, अतः श्री एकलिंग का दर्शन कर उसे दूर करना चाहता हूँ ।

सामन्त—चलिये ।

(सबका गमन)

पटाक्षेप



अङ्क ४

दृश्य १

स्थान—भामाशाह का भवन ।

समय—अपराह्न ।

(भामाशाह और मनोरमा)

मनोरमा—नाथ ! आपने अभी महाराणा के पास से आकर घड़ी भर भी विश्राम नहीं किया और अब पुनः कहीं जाने को तत्पर दिखते हैं, ऐसी क्या जटिल समस्या है जिसके लिये आप इतने व्यग्र रहते हैं ?

भामाशाह—समस्या अभी जटिल नहीं, होने वाली है प्रिये ! मानसिंह का वह अपमान युद्ध की भूमिका बन कर रहा ।

मनोरमा—मुझे उसी दिन आभास हो गया था, कि यह विवाद अवश्य रंग लायेगा । क्या अभी कोई नवीन समाचार दिल्ली से प्राप्त हुए हैं ?

भामाशाह—हुए हैं, मैंने मानसिंह के पहुंचने पर अकबर की राजसभा का समाचार लाने के लिये जो गुप्तचर भेजा था, वह अपना कार्य कर कुशल से आ चुका है ।

मनोरमा—उसने अवश्य वहां घटित घटनाओं का यथार्थ उल्लेख किया होगा ? उन्हें सविस्तार सुनने की उत्कण्ठा मुझे भी है ।

भामाशाह—उत्कण्ठा है तो सुनो । मानसिंह के दिल्ली पहुंचने के पूर्व ही वहां शोलापुर विजयका उत्सव मनाया जा रहा था । मानसिंह का अभिनन्दन करने के लिये विशेष रूप से एक विशाल सभा का आयोजन किया गया था । यहां तक कि अकबर स्वयं उसका सम्मान करने को लालायित था ।

मनोरमा—क्यों न हो ? उष्ट्रों के विवाह में गर्दभ गीत गायेंगे ही । पुनः क्या हुआ ?

भामाशाह—किन्तु जब मानसिंह प्रसन्न नहीं, विषण्ण मुख-मुद्रा बनाये सभाकक्ष में प्रविष्ट हुए तो यवन-नरेश के विस्मय की सीमा न रही । वह मानसिंह की चिन्ता और मनोव्यथा का कारण जानने को आतुर हो उठा । नर्तकियों के चरण जहां के तहां रुक गये, वाद्य-वादकों की अंगुलियां जड़ हो गयीं, उल्लास का समारोह विषाद में परिणत हो गया । अकबर ने मानसिंह को पुचकारते हुए अपनी जिज्ञासा व्यक्त की ।

मनोरमा—उसका समाधान मानसिंह ने किस प्रकार किया ?

भामाशाह—मानसिंह ने, निर्लज्ज मानसिंह ने सिसकारियां भरते यहाँ पर हुए अपमान का उल्लेख उसी प्रकार किया, जिस प्रकार कुलटा नारियां अपने पति से सौतजन्य अपमान का उल्लेख करती हैं । उसकी वाग्चातुरी और कथन-शैली से अकबर की कोपाग्नि प्रज्वलित हो गयी, वह हरे-भरे मेवाड़ को श्मसान बनाने के लिये तड़प उठा ।

मनोरमा—क्या उसने यवनवाहिनी को मेवाड़ पर आक्रमण करने का आदेश दे दिया है ?

भामाशाह

भामाशाह—आदेश ही नहीं दिया, नृशंस यवनदल हल्दीघाटी की ओर प्रस्थान कर चुका है ।

मनोरमा—क्या अविलम्ब ही राजपूतों और यवनों में घमासान समर होगा ?

भामाशाह—राजपूतों और यवनों में नहीं, राजपूतों और राजपूतों में कहो । इस युद्ध में सहोदर ही सहोदर पर प्रहार करेगा, सजातीय ही सजातीय का विनाश करने में जुटेगा ।

मनोरमा—यह कैसे ?

भामाशाह—यह ऐसे, कि मानसिंह और शक्तिसिंह ही इस यवन दल के पथदर्शक बन कर आ रहे हैं ।

मनोरमा—अपमानित मानसिंहका आना स्वाभाविक है, पर शक्तिसिंह भी आ रहे हैं यह सम्बाद अवश्य विस्मयजनक है ।

भामाशाह—कुछ भी विस्मयजनक नहीं, उसके विषय में ज्योतिषियों ने ऐसी ही भविष्यवाणी की थी ।

मनोरमा—विपक्षियों का यह आक्रमण विफल करने के लिये क्या विचार गया है ?

भामाशाह—इस विषय पर आज ही संध्या में अरावली की चोटी पर सब राजपूत-सामन्तों और भील नरेशों की उपस्थिति में विचार-परिषद् बैठने वाली है, वहीं जाने को मैं तत्पर हो रहा हूं ।

मनोरमा—अवश्य जाइये । ऐसी योजना बनाइये जो मानसिंह के सारे प्रयत्नों पर पानी फेर दे ।

भामाशाह—प्रयत्न ऐसा ही होगा । देखो यदि मुझे आने में विलम्ब हो तो तुम चिन्ता मत करना, अब मैं चलता हूं । (गमन)

पटाक्षेप

दृश्य २

स्थान—अरावली का शिखर।

समय—सूर्यास्त के उपरान्त।

(निष्पंद पवन, गगन में तोरामण्डल सहित नवोदित निशानाथ, यत्रतत्र खद्योतों की चमक, महाराणा प्रताप सिंह की विचार-परिषद्, सज्जित शिला पर महाराणा, पार्श्व में मेवाड़माल्य भामाशाह, समीप ही लहराता हुआ केशरिया-ध्वज, एक ओर शस्त्र सज्जित राजपूत सामन्त और अन्य ओर धनुष बाण धारक भील नायक)

भामाशाह—(खड़े होकर) मेवाड़ी वीरों ! आपसे यह अविदित नहीं कि हमारी मातृ-भूमिपर आक्रमण करने के लिये शत्रु एक विशाल यवनवाहिनी के साथ आ रहे हैं। ऐसी दशा में हमें भी पूर्ण सजग हो जाना आवश्यक है। इसी निमित्त इस परिषद्का आयोजन इस निर्जन में किया गया है। आशा है आप महाराणा के उद्गारों पर गम्भीरता से विचार विमर्श करेंगे।

प्रतापसिंह—शूरवीरों ! मानसिंह हम पर आक्रमण करने आ रहे हैं, यह चिन्ता का विषय नहीं है। चिन्ता का विषय वास्तवमें यह है कि हमारी अल्पसंख्यक सेना उनकी विशाल सेनासे मेवाड़ की रक्षा कैसे कर सकेगी ? अतः इस चिन्तासे मुक्त होनेके लिये कोई न कोई उपाय शीघ्र ही करना है।

भामाशाह—मेवाड़ सूर्य ! चिन्ताके मेघ दूर करने के लिये सेना वृद्धि ही प्रमुख उपाय है।

भामाशाह

प्रतापसिंह—पर यह कैसे संभव हो ?

भामाशाह—स्वपक्षीय नरेशों और सामन्तों को रणका निमंत्रण देने से ।

प्रताप सिंह—कौन कौन नरेश हमारी इस रण-यात्रामें सहयात्री बन सकते हैं ?

भामाशाह—इसे रण-यात्रा न कह कर तीर्थ-यात्रा कहें ।

प्रतापसिंह—कारण ?

भामाशाह—कारण इसकी प्रेरक स्वार्थ-भावना नहीं, वरन् देश, धर्म और संस्कृति-रक्षाकी तीन भावनाओं की त्रिवेणी ने इसे तीर्थ बना दिया है । अतः इसके निमित्त की गयी यात्रा को तीर्थ-यात्रा कहना अत्युक्ति नहीं ।

प्रतापसिंह—धन्य हो मंत्रिवर ! अब कहिये, इस तीर्थ-यात्रा में किन्हें निमन्त्रित करना कार्य-सिद्धि में सहायक होगा ?

भामाशाह—मेरे विचारसे ग्वालियर नरेश राजा रामशाह, मालुम्ब्रा सरदार किशन सिंह तथा अन्य अनेक सामन्त हमारी इस यात्रा का निमंत्रण सहर्ष स्वीकार करेंगे । केवल सूचना भेजने का विलम्ब है ।

प्रताप सिंह—विलम्बकी क्या आवश्यकता ? आप कल प्रभात में ही उपर्युक्त नरेशों और सामन्तों को मेरी ओर से रण-निमंत्रण भेज दें ।

भामाशाह—आप निश्चिन्त रहें, उक्त नरेशों की रणमें उपस्थिति मेरे कर्त्तव्य-पालन का प्रमाण होगी ।

प्रताप सिंह—अस्तु ! (सामन्तों से) मेरी सफलताके आधार स्तम्भो ! इस बार के संग्राम में मेवाड़ की सुरक्षा आपके पराक्रम पर निर्भर है । अतः इस देश-सेवा के सुअवसर का सदुपयोग करो । मातृ-भूमि की रक्षा कर अपना क्षत्रिय-जन्म सार्थक करो । रणक्षेत्र में अपना पराक्रम दिखला शैशव में पिये गये जननी के दुग्ध की गरिमा रखो । शत्रु-सेनाका संहार कर अपनी रण-चातुरी का परिचय दो । क्या मैं विश्वास करूँ कि शरीर में प्राण रहते आप कर्त्तव्य से विमुख न होंगे ?

एक राजपूत—मेवाड़ के भाग्य-विधाता ! आप विश्वास ही नहीं इसे ध्रुवसत्य समझिये । हम इस स्वतन्त्रता-यज्ञ में प्राणों की आहुति सहर्ष देंगे । जब तक मेवाड़-गगन संकट के मेघों से मुक्त न हो जायेगा तब तक हम सदैव प्राणार्पण को तत्पर रहेंगे । मुण्ड कट जाने पर भी हमारा खण्ड दो-चार शत्रुओंका संहार कर ही धराशायी होगा ।

प्रताप सिंह—साधुवाद ! वीर सामन्त साधुवाद !! आपके वचन से कई गुणित विश्वास मुझे आपके कर्म पर है ।

भीलनायक— (उठकर) और हम सेवकों के लिये क्या आदेश है ?

प्रताप सिंह—आपके दलसे भी मुझे अनेक आशाएँ हैं—कारण आपका दल मेरी जितनी सहायता कर सकता है उतनी अन्य कोई नहीं । आप अपने दल में मेवाड़ के सिंहासन के प्रति निष्ठाकी भावना को तीव्र करें जिससे कोई विश्वासघात न कर सकें ।

भील नायक—यह आप क्या कल्पना करते हैं ? विश्वासघात दूर, हमारे दल का अबोध शिशु भी अपने कर्त्तव्य-पालन में असावधानी

भामाशाह

नहीं कर सकता । चाहे मार्तण्ड पश्चिम से उदित होने लगे, सागर अपनी मर्यादा त्याग दें और हिमालय भी थर थर कांपने लगे, पर भील जाति कभी स्वामिद्रोह नहीं कर सकती ।

प्रतापसिंह—धन्य हैं आपके सद्बिचार ! (भामाशाह से) आप कल से ही मेवाड़ी सेना में सम्मिलित होने के लिये राजघोषणा करवायें, ऐसा ही प्रचार यथासम्भव जन-साधारण में भी करें ।

भामाशाह—ऐसा ही होगा नरेन्द्र ! आप देखेंगे कि किस उल्लास के साथ वीरताप्रिय युवक सेना में प्रविष्ट होते हैं !

प्रतापसिंह—मुझे आप पर विश्वास है । आशा है आपने सादड़ीसे अपने भ्राता ताराचन्द्र को भी इस युद्ध में भाग लेने बुलवा लिया होगा ।

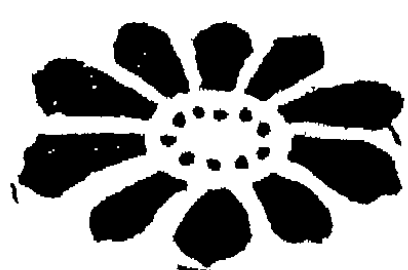
भामाशाह—उन्हें मैं सम्वाद भेज चुका हूं, सम्भवतः वे कल प्रभात तक यहां पहुंच जायेंगे ।

प्रताप सिंह—ठीक, अब रात्रि अधिक हो रही है, अतः परिषद् समाप्त की जाये ।

भामाशाह — (सभासदों से) अब आप सब जा सकते हैं ।

(सबका गमन)

पटाक्षेप



दृश्य ३

स्थान—भामाशाह का भवन

समय—पूर्वाह्न

(बरामदा, द्वारके दोनों ओर स्वस्तिक और ऊपर सुंदर लिपिमें 'अहिंसा परमो धर्मः', सामने की भित्ति पर जैन तीर्थंकर भगवान् शान्तिनाथ का एक कलापूर्ण चित्र, भामाशाह और ताराचन्द्र)

भामाशाह—सहोदर ! शीघ्र ही मेवाड़-मेदिनी रणचण्डी के ताण्डव नृत्य के लिये रंग-भूमि बनने वाली है, इसी आयोजन में सक्रिय सहयोग देने के लिये तुम्हें बुलाया गया है। इस वीर-रस-प्रधान नाटक का नायकत्व राणा करेंगे ही, पर हमें भी इसमें भाग लेने के लिये अपना कर्त्तव्य निश्चित करना है।

ताराचन्द्र—कर्त्तव्य क्या निश्चित करना है ? वह निश्चित-सा ही है। हम स्वाधीनता के पुजारी महाराणा का साथ देंगे। पर
(सहसा मौन)

भामाशाह—पर क्या ? वाक्य का शेषांश कण्ठ में ही क्यों रह गया ? उसे मुख-द्वार से बाहर आने दो।

ताराचन्द्र—यही कि हम अहिंसा धर्म के अनुयायी हैं और इस महासमर में विशाल यवनवाहिनी को परिपक्व धान्य की भांति काटना होगा। तब क्या हम अहिंसा धर्म—प्राणप्रिय अहिंसा धर्म से च्युत न होंगे ?

भामाशाह—नहीं, यह धर्म-युद्ध है, अधर्म-युद्ध नहीं जो धर्मच्युत

भामाशाह

होने का भय हो । और हमारा अहिंसा धर्म भी सिंह बन कर निर्बलों को निगलने की आज्ञा तो नहीं देता पर भेड़ बने रहने की नीति का भी विरोधी है ।

ताराचन्द्र—ठीक है; पर हमारे लिये अहिंसा धर्म परम धर्म बतलाया गया है । अतः शत्रुओंकी हिंसा करते हुये धर्मात्मा बने रहना—ये दो विरोधी तत्व मुझे भ्रान्त कर रहे हैं ।

भामाशाह—बन्धु ! तुम अभी अहिंसा की विशद व्याख्या नहीं समझे । इसी कारण ऐसी शंकाओं की तरंगों से मानस विक्षुब्ध हो रहा है । हम वीतरागी निर्वैर मुनि नहीं, रागद्वेष की शृंखला में निबद्ध गृहस्थ हैं । अतः धर्म तथा न्याय की रक्षाके लिये शस्त्रादि के प्रयोग का अधिकार हमें प्राप्त है ।

ताराचन्द्र—अधिकार ! क्या हमारे धर्माधिकारियों ने गृहस्थों के लिये ऐसा विधान बनाया है ?

भामाशाह—अवश्य, देखो, जैनाचार्य सोमदेव ने कहा है कि जैन नरेश युद्ध-भूमिमें अवतीर्ण शस्त्रधारी तथा स्वराष्ट्रके कण्टक पर ही शस्त्र प्रहार करते हैं । दीन, निर्बल और सद्भावनावाले व्यक्तियों पर नहीं ।* अतः मेवाड़-रक्षाके निमित्त यवन-दलपर प्रहार करना धर्म विरुद्ध नहीं । कारण हमारे प्रहार का उद्देश्य विध्वंसात्मक नहीं, रक्षात्मक है ।

ताराचन्द्र—भ्रातृवर ! आपने अभी सोमदेवाचार्य का कथन

*. यः शस्त्रवृत्तिः समरे रिपुः स्यात्, यः कण्टको वा निज मण्डलस्य ।
अस्त्राणि तत्रैव नृपाः क्षिपन्ति, नदीनकी नानशुभाशयेषु ॥ —यशस्तित्रक

बतलाया, पर वे भी हमसे कुछ विशिष्ट ज्ञानी मनुष्य ही थे, सर्वज्ञ आप नहीं। इस कारण उनका कथन उतना प्रामाणिक नहीं माना जा सकता, जितना धर्म के प्रवर्तक तीर्थंकरों का। अतः आप बतायें कि ऐसा कोई उपदेश उन्होंने दिया है क्या ?

भामाशाह—उपदेश दिया ही नहीं, किंतु आचरण भी किया है। देखो, तुम्हारे समक्ष भित्ति पर जो चित्र अवलम्बित है, वह सोलहवें तीर्थंकर शान्तिनाथ का है। इन्होंने सम्राट-अवस्था में शस्त्र-प्रयोग किया था। इनके विषय में स्वामी समन्तभद्रने लिखा है कि इन्होंने सम्राट् के रूप में चक्र द्वारा शत्रुसमूह को जीतकर पुनः समाधिचक्र से दुर्जय मोह-बल को परास्त किया+। इससे प्रमाणित होता है कि जन्म से मति, श्रुति और अवधिज्ञान के धारक अहिंसा धर्म के प्रवर्तकों ने भी गृहस्थ जीवन में धर्म और न्याय की रक्षा के लिये शस्त्र-प्रयोग किया था। आशा है अब तुम्हें अहिंसा के सत्य स्वरूप का बोध हो गया होगा।

ताराचन्द्र—हो गया पूज्य ! आज आपने गागर में सागरके दर्शन करा दिये। अब एक जिज्ञासा और उठ रही है। वह यह है कि जब गृहस्थ हिंसा करने का अधिकारी है तब उसके लिये अहिंसा-पालन का उपदेश ही क्यों ?

+ चक्रेण यः शत्रुभयंकरेण,

जीत्वा नृपः सर्व नरेन्द्र चक्रम् ।

समाधि चक्रेण पुनर्जिगाय,

महोदयो दुर्जयमोह चक्रम् ॥ बृहत्स्वयंभूस्तोत्र

भामाशाह

भामाशाह—ताराचन्द्र ! इतना विवेचन भी तुम्हारा भ्रम न दूर कर सका । इसका कारण यही है कि तुमने कभी अहिंसा के सिद्धांतों को समझने की चेष्टा नहीं की ।

ताराचन्द्र—आपका कथन यथार्थ है, यह मेरे प्रमाद का ही फल है । पर इस पर विशेष ऊहापोह करने की आवश्यकता भी नहीं पड़ी । अब आज अवसर उपस्थित है, तो उलझनको सुलझा लेना चाहता हूँ ।

भामाशाह—अवश्य सुलझाओ । देखो, अहिंसा धर्म में गृहस्थों के लिये संकल्पी, विरोधी, आरम्भी और उद्यमी—इस प्रकार हिंसा के चार भेद वर्णित हैं । इनमें से गृहस्थ साधक को प्रथम संकल्पी का त्याग आवश्यक है, शेष तीन का नहीं । हम जो यह रक्षात्मक युद्ध करने जा रहे हैं, यह विरोधी हिंसा ही होगी । इसमें हम धर्मभ्रष्ट न होंगे ।

ताराचन्द्र—ठीक है, अहिंसा के अंचल में अनन्त अर्थ-भण्डार है । अपने देश, धर्म और संस्कृति की रक्षा में तत्पर योद्धा भी अहिंसा-पालक कहा जा सकता है—यह इस अहिंसा धर्म की उदारता है । मैं अभी तक समझता था कि अहिंसा धर्म दुर्बलता और दीनता का पोषक है; पर आज आपके दिये ज्ञान-दिवाकर से भ्रांति की यह यामिनी विलीन हो गयी ।

भामाशाह—मेरा उद्देश्य पूर्ण हो गया । आज का यह प्रसंग भी सुन्दर रहा । अब जब विवेचन प्रारम्भ हुआ है तो एक बात और कहना अप्रासंगिक न होगा । वह यह कि बाह्य शत्रुओं का विजेता ही

आभ्यन्तर शत्रुओं का विजेता हो सकता है। कर्मशूर ही धर्मशूर बन सकता है। बोलो, अब तो युद्ध में भाग लेने को तत्पर हो न ?

ताराचन्द्र—तत्पर ही नहीं, कटिबद्ध हूं। अब मैं संकल्प करता हूं कि आमरण मेवाड़-रक्षा के लिये कर्तव्यशील रहूंगा।

भामाशाह—तुम्हारे इस संकल्प से मुझे आह्लाद है।

पटाक्षेप

दृश्य ४

स्थान—भामाशाह का शयनागार।

(युद्धारम्भ की पूर्व रात्रि का तृतीय प्रहर, विश्रामोसन पर भामाशाह और उनके पार्श्व में ही मनोरमा)

भामाशाह—प्रिये ! मानसिंह का दुस्साहस देखो कि अपनी ही मातृभूमि पर आक्रमण करने आया है। जिस भू की पुण्यरज से उसे अपना ललाट अलंकृत करना चाहिये, उसी भू को यवन-सेना के चरणों से कुचलवा रहा है।

मनोरमा—ठीक कहते हैं, मुझे भी उसकी मूर्खता देखकर विस्मय होता है। कहिये, उसकी सेना यहां से कितनी दूर है ?

भामाशाह—अधिक दूर नहीं प्रिये ! खमनौर के निकट ही रक्त तलैया पर वह पूर्ण दल बल के साथ ठहरा है। प्रभात होते ही दोनों दलों में लोमहर्षक युद्ध होगा। ओफ ! इस युद्ध-कालमें तुम्हारी चिंता करने का भी अवकाश न पा सकूंगा। इसका मुझे अत्यन्त खेद हो रहा है।

भामाशाह

मनोरमा—इसमें खेद की क्या आवश्यकता ? मातृभूमि के समक्ष मैं कोई महत्व नहीं रखती ।

भामाशाह—यह ठीक है, पर जाने किस दुर्भाग्य से तुम्हें मेरे जैसे पुरुष की अर्द्धांगिनी बनना पड़ा है, जो राजनैतिक उलझनों में व्यस्त रहता है, स्वामी-रक्षा के लिये जो युद्ध-स्थली में जाने को तत्पर हो रहा है । हा ! कल से मैं तुम्हारी किसी भी सुख-सुविधा का ध्यान न रख सकूंगा ।

मनोरमा—नाथ ! ऐसा कह कर मुझे लज्जित न करें । जो सुख इन्द्र की इन्दाणी को भी दुर्लभ है, चक्रवर्ती की पटरानी को भी अलभ्य है, वह आपकी जीवन-सहचरी बन मैंने पाया है । जिसे आप मेरा दुर्भाग्य कहते हैं उसे मैं अपना सौभाग्य समझती हूँ ।

भामाशाह—इसमें सौभाग्य की क्या बात ?

मनोरमा—सौभाग्य न होता, तो आप जैसे कर्मशील और देशभक्त वीर पुरुषकी दासी बनने का अवसर न मिलता । क्या ही अच्छा होता यदि मैं भी युद्ध-भूमिमें साथ जा आपकी सेवा सुश्रुषा कर सकती ।

भामाशाह—यह सम्भव नहीं है प्रिये ! भयंकर युद्धस्थली तुम जैसी कोमलांगियों के संचरण योग्य नहीं ।

मनोरमा—प्राणेश ! यदि यह सम्भव नहीं, तो मेरी चिन्ता के विचार को हृदय से निकाल रण-यात्रा प्रारम्भ करें ।

भामाशाह—प्रिये ! तुम्हारी इस प्रेरणा और सहानुभूति से मेरा रणोत्साह द्विगुणित हो रहा है, अब मुझे कोई भी बाधा युद्ध-भूमि से नहीं हटा सकती । तुम प्रसन्न हृदय से मुझे बिदा दो, तुम्हारी शुभ-कामनाएं इस संग्राम में मेरे लिये सम्बल बनें ।

मनोरमा—हृदयेश ! आप सहर्ष युद्ध के लिये प्रस्थान करें, मेरी ममता भुला कर्त्तव्य-पालन में सजग रहें । भगवान् पार्श्वनाथ आपके शरीर को कुशल रखें, मेवाड़ रक्षा कर आपका पौरुष सफल हो । विजयोल्लास से प्रदीप्त आपका मुखचन्द्र देखने का सौभाग्य मुझे शीघ्र मिले—यह मेरी मंगलकामना है ।

भामाशाह—प्रिये ! तुम्हारी मनोकामना पूर्ण हो । अब उषा प्राची के गर्भ से जन्म लेने वाली है । अतः लाओ मेरे शस्त्र उठा दो, कारण महाराणा के पहुँचने के पूर्व ही हल्दीघाटी पर मेरा पहुँचना आवश्यक है ।

(भामाशाहको गमनातुर देख मनोरमा द्वारा नीराजन, ललाट पर हल्दी और अक्षत से तिलकालेखन, सप्रेम चरण स्पर्शन और पतिके अंगों पर यथाविधि शस्त्रों का अलंकरण)

भामाशाह— (सज्जित होकर) प्रिये ! अब युद्धभूमि के लिये प्रस्थान करता हूँ ।

मनोरमा—नाथ ! जायें, सहर्ष जायें, मेरी शुभ कामनाओं के साथ जायें । आप जब विजयी होकर आयेंगे; जब मैं रत्नदीपकों से आपकी आरती उतारूंगी, चरणरज लेकर सुहाग-चूनरी के अंचल में बांधूंगी, आपके क्षतों की परिचर्या करूंगी, तब स्वाभिमान से मेरी छाती फूल उठेगी । हम दोनों जिनालय में जा भगवान् से शान्ति-कामना करेंगे ।

भामाशाह—सौभाग्य से ऐसा ही हो । अब मैं कर्त्तव्य-पालन के लिये विदा होता हूँ । (गमन)

पटाक्षेप

दृश्य ५

स्थाथ—अरावली का एक शिखर

समय—उषा

(विनाशोन्मुख अन्धकार प्राची-पट पर उषा-लालिमा, अपने प्रिय अश्व चेतक पर आरुढ़ वीर-वेश में महाराणा, उनके पार्श्व में एक अश्व पर भामाशाह तथा 'महाराणा प्रताप की जय' 'मेवाड़ भूमि की जय' के नारे लगाते अन्य अश्वारोही सामन्त तथा धनुर्वाणधारी भील)

प्रताप सिंह—(नेपथ्य की ओर देखते हुये) महामात्य ! इस ओर यवन-सैनिकों की संख्या साधारण दिख रही है । ये वास्तव में इतने ही हैं या कई श्रेणियों में विभक्त हो पृथक पृथक स्थानों में छिपे हैं ?

भामाशाह—नरेन्द्र ! मैंने उनके दलके विषय में पूर्ण विवरण लाने के लिये अपने गुप्तचर प्रेषित किये थे, पर जाने क्यों वे अभी तक नहीं लौटे । कहीं शत्रुदल के बन्दी न बन गये हों ? (नेपथ्य की ओर देखकर) पर ऐसा सम्भव नहीं, यह एक गुप्तचर इसी ओर बढ़ा आ रहा है । देखें, क्या समाचार सुनाता है ?

(गुप्तचर का प्रवेश)

प्रताप सिंह—कहो ! तुमने यवन-शिविर में जाकर क्या भेद लिया ? उनके सैनिक संख्या में कितने हैं तथा वे किन किन स्थानों पर डटे हैं ? सारा वृत्तान्त शीघ्र कहो ।

गुप्तचर—प्रजापाल ! यवन सैनिकों की संख्या प्रायः एक लक्ष हैं, पर वे कई भागों में विभक्त हो यत्र तत्र छिपे हैं ।

प्रतापसिंह—क्यों ? मानसिंह ने ऐसी योजना क्यों बनायी ?

गुप्तचर—यह इसलिये कि जिससे राजपूत सेना यवन दल को अल्पसंख्यक समझ कर समभूमि पर उतर आये, पश्चात् उनकी छिपी हुई टुकड़ियां हमपर मधुमक्खियों-सी चारों ओर से टूट पड़े।

प्रतापसिंह—(सक्रोध) मानसिंह मेरे साथ यह चाल चल रहा है। पर मैं उसकी इस चाल को अपनी रण-कलाके भूचाल से चकनाचूर कर दूंगा। (भामाशाह से) भामाशाह ! कहिये, इस विकट स्थिति में किस नीति का आश्रय लेना चाहिये ?

भामाशाह—मेरी सम्मति है कि हम पर्वत से नीचे न उतरें और यहीं से यवन दल पर प्रहार कर शत्रु की योजना निष्फल कर दें।

प्रतापसिंह—ठीक है, मानसिंह समझता है कि उसकी चाल प्रतापसिंह पर चल जायेगी। पर उसे यह ज्ञात नहीं कि प्रतापसिंह कोई नवशिक्षित सैनिक नहीं, समर-शिक्षा-पारंगत योद्धा है। अब हम अभी समभूमि पर न उतरेंगे, यहीं से शत्रु पर शस्त्र प्रहार करेंगे। अतः अब अरावली के इसी शिखर पर केशरिया ध्वज फहरा दिया जाये।

(एक सैनिक द्वारा ध्वजात्तोलन)

प्रतापसिंह—रणमत्त वीरों ! अभी रणारम्भ में कुछ क्षण का विलम्ब है। आओ, तब तक एक देश-प्रेम-मय गीत गाकर अपने हृदय में साहस भर लें तथा अपनी धमनियों के रक्त-प्रवाह की गति तीव्र कर लें।

(ध्वज के चारों ओर खड़े हो सर्व वीरों द्वारा गान)

भामाशाह

मातृ भूमि ! युद्ध पर्व में तुम्हें प्रणाम ।

दो अशीष रख सकें स्वतन्त्रता अखण्ड ।

तब हृदय न छू सके यवन-चमू-प्रचण्ड ॥

व्यर्थ हो अराति वर्ग की हरेक चाल ।

एक शूर हो सहस्र शत्रु हेतु काल ॥

जय मिले कि या मिले पुनीत स्वर्गधाम ।

मातृभूमि ! युद्धपर्व में तुम्हें प्रणाम ॥

आज तुम हमें करो यही सुवर प्रदान ।

अरि समक्ष हो न नत स्वदेश-स्वाभिमान ॥

शत्रुदल विशाल देख हम न हों अधीर ।

लक्ष्य पूर्ति हो अभीष्ट, प्रिय न हो शरीर ॥

वीर मृत्यु पर समुद अमर करें स्वनाम ।

मातृभूमि ! युद्धपर्व में तुम्हें प्रणाम ॥

(युद्ध-वाद्य-ध्वनि)

भामाशाह—वीर सैनिकों ! अब युद्धारम्भ की सूचना हो रही है, आप सब यवन दल के प्रहार व्यर्थ करने के लिये कटिबद्ध हो जायें । हमारी अल्पतम असावधानी भी उसकी सफलता का प्रवेश-द्वार बन सकती है । अतः शरीर में प्राण रहते आप सब शत्रुसेना का संहार करते हुए महाराणा की रक्षा में तत्पर रहें ।

[सैनिकों के कोषों से निकल खड़्गों की चमचमाहट, नेपथ्य में तोपों के छूटने की गड़गड़ाहट, अश्वों के टापों की ध्वनि और युद्धारम्भ]

पटाक्षेप

अङ्क ५

दृश्य १*

स्थान—कुम्भलमेर का एक विशाल सरोवर-तट

समय—कार्तिक का प्रभात ।

[सरोवरतटपर तरु-पंक्तियाँ, आम्र-वृक्षों पर कोकिलाओं का पंचम आलाप, सरोवर के सुशीतल सलिल में डूबकियां लगाते हुए रंग-बिरंगे विहग, निकट ही हरित् दूर्वादल पर चरते हुए पशु, अरावली पर्वत की श्रेणियों पर चढ़ मेवाड़ का प्राकृतिक सौन्दर्य निहारते हुए नवोदित दिवाकर, सरोवर की जल-तरंगों के साथ केलि करती हुई अरुणाभ रश्मियां, प्रकृति के इन दृश्यों में निमग्न भामाशाह, एक ओर से हस्त में मयूर पिच्छिका तथा कमण्डलु लिये प्रशान्ताकृति जैन सन्त का आगमन]

भामाशाह—(निकट पहुँच कर भक्ति पूर्वक) नमोऽस्तु शांतिमूर्ते !

सन्त—(स्वाभाविक स्मितिपूर्वक) धर्मवृद्धिस्तु वत्स !

भामाशाह—(तेजस्वी मुख के सामने देख सविनय) विभो ! मैं यह जानने को उत्सुक हूँ कि आपके पुण्य पदार्पण से कौन-सा नगर पवित्र होने वाला है ?

सन्त—(स्वाभाविक रीति से) श्रावक ! मैं यों ही भ्रमण करता कुम्भलमेर की ओर जा रहा हूँ ।

* यह दृश्य 'मेवाड़नो पुनरुद्धार' नामक गुजराती पुस्तक के चतुर्थ प्रकरण 'कर्त्तव्यनी दिशा' के आधार पर लिखा गया है

भामाशाह

भामाशाह—किन्तु गुरुदेव ! वर्तमान में मेवाड़-मेदिनी शत्रु के अत्याचारों की क्रीड़ास्थली बनी हुई है । अतः यह निश्चिन्त विहारका समय नहीं, प्राण और धन की सुरक्षा का समय है ।

सन्त—प्राण और धन की सुरक्षाका समय है—मायालिप्त गृहस्थों के लिये; निस्पृह गृह-त्यागियों के लिये नहीं । जो धन-धान्य, बन्धु-बान्धव और जीवन का भी मोह त्याग आत्मविहारी बन गया है, वह चाहे जहां कहीं, निश्चिन्ततासे विहार करने के लिये स्वतन्त्र है ।

भामाशाह—सत्य है तपोधनी ! आपके आत्म-धन और सच्चिदानन्दमय प्राणोंको हरण करनेकी क्षमता किसी में नहीं । कारण आपका अस्तित्व संसार में अवश्य है पर संसार का अस्तित्व आपमें नहीं । इसके विपरीत हम जैसे संसारियों के अन्तर में अनन्त संसार अस्तित्व बनाये है । अतः, हमारी निराकुलता का दाह-संस्कार करने के लिये चिन्ता की चिता निरन्तर जलती रहती है ।

सन्त—(भामाशाह की ओर सतेज दृष्टि कर) भामाशाह ! आज आपके मुख से ये कैसे उद्गार सुनने को मिल रहे हैं ? मेवाड़ के महाराणा के मन्त्री और पवित्र जैनधर्म के अनुयायी होकर आप इतनी निराशा का अनुभव करें, यह उचित नहीं ।

भामाशाह—क्या करूं ? कृपानाथ ! देश, धर्म और अपने आश्रितों की दुर्दशा देखने की क्षमता मेरे नेत्रों में नहीं ।

सन्त—पर स्वयं निराशा और चिन्ता के दलदल में फंस कर अन्य का उद्धार असम्भव है । कारण निराशा और चिन्ता उन्नति के वृक्ष को काटने वाली कुल्हाड़ियां हैं, क्या आपको यह ज्ञात नहीं ?

भामाशाह—ज्ञात है दयासागर ! पर ज्ञात होते हुए भी तदनुकूल आचरण करने की क्षमता मेरी आत्मा में नहीं ।

सन्त—(शान्ति से) यह आपकी आत्मिक दुर्बलता है । जब तक आप इस दुर्बलता से अपने हृदय को मुक्त न कर लेंगे, तब तक जयश्री की आराधना सफल नहीं हो सकती । प्रत्येक आत्मा में अनन्त शक्ति है, इस अतन्त शक्ति पर श्रद्धान किये बिना आप देश, धर्म, समाज और अपनी आत्मा का कल्याण नहीं कर सकते ।

भामाशाह—अकारण बन्धो ! देश, धर्म और समाज का कल्याण आप जैसे त्यागी, निस्पृह और साधनाशील महामानव द्वारा ही सम्भव है, मुझ जैसे पामरों से ऐसे महत्कार्य असाध्य ही हैं ।

सन्त—बुद्धिमान मन्त्रिन् ! आप पामर नहीं, वीर पुरुष हैं । वास्तव में आपको अभी अपनी ही शक्ति का बोध नहीं । जिस दिन आपको अपनी आत्मा की अचिन्त्य शक्तिका बोध हो जायेगा, उस दिन आप मेवाड़का ही नहीं, अखिल लोकका उद्धार कर सकेंगे । अतः साहस के सूर्य से निराशा की निशा को नष्ट कर कर्मशील बनिये ।

(सहसा अश्व पर आरुढ़ महाराणा प्रतापसिंह का आगमन)

प्रतापसिंह—(अश्व से उतर बन्दना करते हुये) ज्ञानमूर्ते ! वृक्ष की ओट से आपके पवित्र उपदेशामृतके कुछ कणों का आस्वादन कर अवर्णनीय आह्लाद हुवा । इससे मेरे हृदय में शक्ति, स्फूर्ति और साहस की नयी त्रिवेणी फूटी है । जिसमें निमग्न हो मैं मेवाड़-उद्धार के लिये प्रतिज्ञाबद्ध होता हूँ ।

(सन्त द्वारा सहज मन्द हास्य)

भामाशाह

भामाशाह—गुरुदेव ! आपके प्रत्येक शब्द का प्रभाव मेरे हृत्पटल पर विस्तार पाता जा रहा है । अतः मैं भी अपने महाराणा द्वारा प्रशस्त पथ पर चरण बढ़ाने का संकल्प करता हूँ ।

सन्त (महाराणा की ओर देख कर) मेवाड़-नरेश ! आप और आपके अमात्य के वीर प्रण से मुझे स्वर्गीय आह्लाद का अनुभव हो रहा है ।

भामाशाह—क्षमावतार ! क्या मैं आपके इस आह्लाद का कारण जान सकता हूँ ?

सन्त—क्यों नहीं ? वीतरागी के मनोभाव गोपनीय नहीं होते । मुझे भी इस वीर-प्रसविनी मेवाड़-वसुन्धरा में जन्म लेने का सौभाग्य मिला है, इसी के अन्न जल से मेरे शरीर का प्रत्येक परमाणु पुष्ट हुवा है । आज भी इसी के सुशीतल क्रोड़ में आत्मतपःपूत साधना कर आत्मिक सुख का अनुभव करता हूँ । अतः इसके उद्धार के लिये प्रत्येक संभव प्रयास करना मेरा कर्त्तव्य है ।

प्रतापसिंह—(उत्सुकता से) क्या जैन सन्त भी युद्ध के पक्षपाती होते हैं ?

सन्त—नहीं ! मेरे उपदेश का यह तात्पर्य नहीं कि आप निरपराध मानवों की हत्या कर शोणित के स्रोत बहायें । शत्रु को व्यर्थ अमानुषिक यातनाएं दें, निर्दोष प्रजा का धन धान्य लूट कर उसके निवास-गृहों में आग लगायें । वरन् मैंने आपको कर्त्तव्य-बोध कराने के लिये ही देश, धर्म और बन्धुओं की रक्षा के लिये उपदेश दिया है ।

भामाशाह—धन्य है साधुवर आपका नीर-क्षीर विवेक ! अब हम आपके उपदेशानुसार ही आचरण करेंगे ।

सन्त—यदि ऐसा किया तो शीघ्र ही स्वपर कल्याण में समर्थ होओगे। श्री शांतिनाथ की कृपा से आपको राष्ट्र में शांति स्थापित करने की क्षमता मिले—यही मेरी कामना है। (गमन)

पटाक्षेप

दृश्य २

स्थान—चावण्ड

समय—प्रभात

(महाराणा प्रतापसिंह और भामाशाह)

प्रतापसिंह—भामाशाह ! इस युद्ध में मेरा इतना विनाश हुआ है कि जिसकी कोई सीमा नहीं। मेरा प्राणरक्षक भाली सरदार मुझसे सदा के लिये विदा हो गया। प्रिय अश्व चेतक भी मेरी रक्षा में सदा के लिये सो गया। ग्वालियर-नरेश राजा रामशाह और उनके पुत्र खण्डेराव भी स्वर्ग सिधार गये। इसके अतिरिक्त १४ सहस्र राज-पुत भी रणचण्डी की भेंट चढ़ गये, पर इतनी आहुति भी जयश्री की प्रसन्नता के लिये पर्याप्त नहीं हुई।

भामाशाह—इसी कारण उत्साह में शिथिलता आ चली थी, हृदय-प्रदेश पर चिन्ता का शासन विस्तार पाता जा रहा था, पर उन संत के उपदेश से विदा होता हुवा साहस लौट आया है, चिन्ता की ज्वाला बुझ चली है।

प्रतापसिंह—मुझे भी उनके उपदेश से एक अपूर्व बल मिला है, पर अब प्रण-पूर्ति के लिये क्या योजना बनायें ? यह विचारणीय है।

भामाशाह

भामाशाह—मेवाड़-मुकुट ! इस समय युद्ध की विभीषिका से पोखरियों का जल सड़ गया है, अगणित शवों की दुर्गन्ध से वायु-मण्डल विषैला हो गया है, यवन दलमें विभिन्न रोगोंका प्रकोप विस्तार पाता जा रहा है, नित्य कुछ न कुछ यवन सैनिक मृत्यु की भेंट चढ़ते जा रहे हैं, इन सब कारणों से वे अभी आक्रमण न करेंगे । अतः यही उपयुक्त समय है जब हम अपनी सेनाका नवीन संगठन कर सकते हैं ।

प्रतापसिंह—अवसर यही है, पर हमारे पास सेना संगठित करने के लिये न धन रह गया और न अन्य साधन ही । समस्त कोषोंका रजत और स्वर्ण युद्ध में व्यय हो चुका है, आपके साधन भी समाप्त हो चुके हैं । अतः धनाभाव से नवीन सेना एकत्रित करना असंभव सा है और युद्धावशिष्ट सैनिक कितने क्षण युद्धमें ठहर सकते हैं ?

भामाशाह—हमारे सामने यही समस्या सबसे जटिल है । मेवाड़ की स्वाधीनता अक्षुण्ण रखने के लिये आप जो उपाय बतलायें उसे करने के लिये मैं तत्पर हूँ ।

प्रतापसिंह—उपाय धन-प्राप्ति के सिवा और कुछ नहीं, कहीं से भी पर्याप्त धन-राशि प्राप्त कीजिये और उससे वेतन-भोगी सैनिक रख कर यवनों के आक्रमण विफल किये जायें । तभी संतके समक्ष ली हमारी प्रतिज्ञा पूर्ण हो सकती है, अन्यथा नहीं ।

भामाशाह—यह उपाय अवश्य सफलता का साधक हो सकता है, पर धन की प्राप्ति कहाँ से होगी ?

प्रतापसिंह—सैन्य-व्यय चलाने योग्य धन-राशि किसी नरेश से ही प्राप्त हो सकती है, अन्य से नहीं ।

भामाशाह—कहिये, किस धनी नरेश से हमारे आर्थिक अभाव की पूर्ति सम्भव है ? राजपूत नरेशों से सहयोग पाने की आशा ही नहीं, क्यों कि वे अकबर के पक्षपाती बन आपको भी शत्रुवत् समझने लगे हैं ।

प्रतापसिंह—आपका कथन सत्य है, राजपूत-नरेशों से मुझे भी कोई आशा नहीं । हां, मालवा-नरेश से अवश्य कुछ अभीष्ट सिद्ध होने का अनुमान है ।

भामाशाह—आपने अत्यन्त उपयुक्त नरेशको ही सोचा । मालवा-नरेश से अवश्य धन प्राप्त हो सकता है पर वे भी सरलता से हमारे हस्तों में मुद्राओं की थैलियां न दे देंगे ।

प्रतापसिंह—आपका कथन ठीक है, कोई भी प्रसन्नता-पूर्वक अपनी लक्ष्मी दूसरे को नहीं दे देता । बिना कोल्हू में पेले अज्ञानी इक्षु भी मधुर रस नहीं देता, फिर ये तो ज्ञानवान् नरेश हैं । अतः इसके लिये उन्हें धमकी देनी पड़ेगी, युद्ध का भय दिखलाना होगा; तब कहीं उनके कोष से कुछ सम्पत्ति प्राप्त हो सकेगी ।

भामाशाह—जो भी करना पड़ेगा, मैं मेवाड़-उद्धार का स्वप्न साकार करने के लिये वह सब करूंगा । केवल आपके आदेश का विलम्ब है, पश्चात् योजना कार्यान्वित होने में विलम्ब न लगेगा ।

प्रतापसिंह—यदि आप इसके लिये तत्पर हैं, तो कुम्भलमेर की प्रजा को लेकर रामपुरे की ओर जायें । सहायता के लिये अपने सहोदर ताराचन्द्र को भी साथ ले लें । जैसे भी बने, मालवा-नरेश से कुछ न कुछ आर्थिक सहायता लेकर ही मेवाड़ लौटें ।

भामाशाह

भामाशाह—आपकी आज्ञा शिरोधार्य है, मैं अभी ताराचन्द्र से परामर्श कर मालवा की ओर प्रस्थान करता हूँ ।

प्रतापसिंह—जाइये, विलम्ब मत कीजिये, यदि सम्भव हो तो कल ही यहां से प्रस्थान कर दीजिये ।

भामाशाह—ऐसा ही होगा । मैं आज ही इस दीर्घ यात्रा का सारा प्रबंध कर लूंगा । (गमन)

पटाक्षेप

दृश्य ३

स्थान—महाराणा प्रतापसिंह का सभा भवन

समय—संध्या

(महाराणा प्रतापसिंह और सामन्तगण)

प्रतापसिंह—प्रिय सामन्तों ! जिस दिन से मैंने राज्य-सत्ता ग्रहण की, उसी दिन से भामाशाह अपने सत्परामर्श से शासन चलाने में मुझे सहयोग देते आये, पर इस समय उन्हें मालवा की ओर भेज देने से एक शीघ्र पूरणीय अभाव प्रतीत होता है । कारण राजनैतिक घटनाचक्रकी गति तीव्रतम है । ऐसी परिस्थितिका शान्ति से सामना करने के लिये भामाशाह के स्थान पर एक अन्य सचिव नियुक्त करना आवश्यक है । अतः विचारिये, कौन महाशय इस पद का उत्तरदायित्व निभाने योग्य हैं ?

एक सामन्त—नरेन्द्र ! भामाशाह के समान योग्य व्यक्ति मुझे मेवाड़ भर में दृष्टिगोचर नहीं होता ।

प्रतापसिंह—जब है ही नहीं, तो दृष्टिगोचर क्या हो ? पर जो यहां विद्यमान हैं, उन्हीं में से किसी योग्यतम का निर्वाचन करना होगा ।

द्वितीय सा०—आपका कथन सत्य है, मेरी सम्मति में जब तक भामाशाह मालवा से लौट न आयें तब तक के लिये रामा सहाणीको ही इस पद पर नियुक्त कर लिया जाये ।

प्रतापसिंह—यह सम्भव है, पर रामा सहाणी से स्वीकृति ले लेना आवश्यक है । द्वारपाल ! इधर आओ ! (द्वारपालका प्रवेश) जाओ, रामा सहाणीको लिवा कर शीघ्र उपस्थित होओ ।

द्वारपाल—जो आज्ञा ! (द्वारपालका गमन, कुछ क्षणोपरान्त रामा सहाणी का अभिवादन करते हुए प्रवेश)

प्रतापसिंह—आइये, इधर पार्श्व के आसन पर विराजिये ।

रामा सहाणी—(अपना आसन ग्रहण कर) कहिये, अन्नदाता ! आज सेवक को कैसे स्मरण किया ?

प्रतापसिंह—आज एक आवश्यक कार्य के हेतु ही यह कष्ट दिया गया है । आपको विदित ही है कि भामाशाह मालवा की ओर गये हैं । उनके अभाव में मन्त्रिपद रिक्त हो गया है, अतएव मेरी इच्छा है कि आप इस पद को स्वीकार करें ।

रामा सहाणी—(आन्तरिक आह्लाद को गोपन करते हुए) पर मुझ जैसे अयोग्य व्यक्ति से यह गुरुभार वहन कैसे सम्भव होगा ?

प्रताप सिंह—इसकी आप चिन्ता न करें, मुझे इस समय केवल आपकी स्वीकृति मात्र आवश्यक है ।

भामाशाह

रामा सहाणी—यदि आपकी ऐसी ही आज्ञा हो तो उसे टालने का साहस कौन कर सकता है ? मैं आपका आदेश शिरोधार्य करता हूँ ।

प्रतापसिंह—आपकी इस स्वीकृतिसे मुझे प्रसन्नता है । लीजिये यह राजमुद्रा स्वीकार कीजिये । आज से आप मेरे सहायक मंत्री हुए, मेवाड़-सेवा के प्रति सदैव जागरूक रहना आपका कर्तव्य है ।

रामा सहाणी—मैं यथासम्भव मेवाड़-रक्षा का प्रयत्न करूंगा ।

प्रताप सिंह—साधुवाद ! अब आज की विचार-परिषद् समाप्त की जाती है ।

(सबका गमन)

पटाक्षेप

दृश्य ४

स्थान—मालवा का सीमा प्रान्त ।

समय—प्रभात ।

[समतल भूमि पर अनेक शिविर, स्वकीय दैनिक कार्यों में व्यस्त मेवाड़ी जन, एक शिविर के बहिर्भाग में भामाशाह और ताराचन्द्र]

भामाशाह—ताराचन्द्र ! मेवाड़-उद्धार की भावना हमें जन्मभूमि से इतनी दूर मालवा प्रांत की सीमा पर ले आयी है, अब यह अवसर भाग्य की परीक्षा का है ।

ताराचन्द्र—पूज्य ! भाग्य की परीक्षा का नहीं, हमारे पौरुष की परीक्षा का अवसर है । हमें भाग्य का अवलम्बन त्याग पौरुष का

प्रयोग करना है । कारण पौरुष ही दुर्भाग्य को सौभाग्य में परिवर्तित करने में समर्थ है ।

भामाशाह—तुम्हारा कथन अन्यथा नहीं, पर भाग्य और पौरुष सफलता-रूप रथ के दो चक्र हैं । भाग्य-चक्र का संचालन नियति करती है और पौरुष-चक्र का संचालन पुरुष । इस नियम के अनुसार ही हम पौरुष की परीक्षा कर रहे हैं । अब कहो, मालवा-नरेश से धन प्राप्त करने के लिये किन उपायों का प्रयोग किया जाये ?

ताराचन्द्र—इस विषय में मेरा विचार है कि दूत द्वारा उन्हें एक पत्र भेजकर अपना अभिप्राय व्यक्त करें, अभिप्राय ज्ञात होने पर सम्भवतः वे कुछ सम्पत्ति अवश्य मेवाड़-उद्धार के निमित्त दे देंगे ।

भामाशाह—यदि पत्र-मात्र प्रेषित करने से अभीष्ट की सिद्धि हो सके तो कहना ही क्या ? गुड़ खिलाने से ही यदि मृत्यु संभव हो तो विष प्रयोग करने की आवश्यकता ही क्या ? सर्वप्रथम यही प्रयत्न कर देखना चाहिये । यदि लेखनी का प्रयास निष्फल हुआ तो फिर कृपाण की सहायता ली जायेगी । जाओ, शिविर से लेखन-सामग्री लाओ । मैं इसी समय एक पत्र मालवेन्द्र को प्रेषित करता हूँ ।

(ताराचन्द्र द्वारा मसि-पात्र, लेखनी आदि का आनयन)

भामाशाह—(मसि-पात्र में लेखनी डूबोते हुए) देखो, मैं जब तक पत्र लिख रहा हूँ, तब तक एक चतुर दूत को बुलाओ, जो पूर्ण सावधानी के साथ हमारा पत्र मालवा-नरेश तक पहुंचा सके ।

(ताराचन्द्र का गमन और भामाशाह का पत्र लेखन, क्षणोपरान्त दूत के साथ ताराचन्द्र का प्रवेश)

भामाशाह

भामाशाह—(पत्र पर श्री नाम लिखते हुए) गुप्तचर ! यह पत्र मालव-नरेश तक पहुँचाने का भार तुम्हें दे रहा हूँ । पत्र उन्हें देकर और उसका उत्तर भी प्राप्त कर अविलम्ब लौटना है । अतः लो (पत्र देते हुए) इसे सुरक्षित रख लो । मार्ग में सावधानी अपेक्षित है ।

दूत—जो आज्ञा ! (गमन)

पटाक्षेप

दृश्य ५

स्थान—मालव-नरेश की राज-सभा ।

समय—दिन का द्वितीय प्रहर ।

[राज सिंहासन पर मालवेन्द्र तथा अन्य आसनों पर मन्त्री, कोषाध्यक्ष आदि]

मालवेन्द्र—अमात्यवर ! आज के नवीन समाचार सुनाइये ।

मन्त्री—नरेन्द्र ! आज कोई विशेष समाचार नहीं, राणा प्रताप-सिंह के मन्त्री भामाशाह के इधर आने का समाचार अवश्य गुप्तचर द्वारा प्राप्त हुआ है ।

मालवेन्द्र—(आश्चर्य से) मन्त्रिवर ! यह समाचार साधारण नहीं, राणा प्रताप सिंह के मन्त्री इस समय इस ओर अवश्य किसी दुर-भिप्राय से आये होंगे । कारण इस समय यवनदल के आक्रमणों से मेवाड़ पर संकट के मेघ मड़रा रहे हैं । बप्पा रावल और राणा सांगा की विमल कीर्ति की अग्नि-परीक्षा हो रही है । शिशोदिया वंश की स्वतन्त्रता अन्तिम श्वासें ले रही हैं । इस संकटापन्न काल में राज्य

के कर्णधार राणा को छोड़ कर इधर चले आना केवल मूर्खता ही नहीं, स्वामिद्रोह भी है ।

मन्त्री—न्यायावतार ! ऐसी कल्पना न करें । भामाशाह का हृदय बुद्धिमत्ता और स्वामि-भक्ति दोनों का संगम है । वे कभी महाराणा को विपत्ति में छोड़कर नहीं आ सकते । निस्सन्देह उनकी इस यात्रा का कोई विशेष उद्देश्य होगा ।

मालवेन्द्र—स्वामी को संकट में छोड़ कर चले आनेका उद्देश्य स्वार्थ-साधन के सिवा और क्या होगा ? वे अवश्य ही महाराणा को निर्धन समझ कर किसी समृद्ध नरेश के यहां शरण लेने आये होंगे ।

मन्त्री—धर्मावतार ! ऐसी कुशंका न करें । कृतघ्नता भामाशाह को स्पर्श भी नहीं कर सकती । उनकी स्वामि-भक्ति की प्रशंसा सुनने का अवसर मुझे अनेक बार मिला है । मेवाड़के सिंहासनके प्रति उनकी स्वामिभक्ति आज की नहीं, यह तो पैतृक उत्तराधिकार है । इनके जनक भारमल्ल भी महाराणा उदयसिंह के मन्त्री रहे हैं और राणा प्रतापसिंह के राज्यारोहण के दिन से ही ये मेवाड़ के मन्त्री-पद पर प्रतिष्ठित रहे । अतः इनसे विश्वासघात की आशंका धेनुके स्तनो से विषकी आशंका के समान निर्मूल है ।

मालवेन्द्र—यदि आपको इनकी स्वामिभक्ति पर इतना विश्वास है तो ये अवश्य ही राणाके किसी कार्य से यहां आये होंगे । पर परराष्ट्र के मन्त्री से सतर्क रहना राजनीति है । अतः आप उनके इधर आगमन का उद्देश्य शीघ्र ज्ञात करिये, मुझे सन्देह है कि उनके आगमन का प्रयोजन हमारा अहित करना ही है ।

भामाशाह

मंत्री—नरेन्द्र ! आप निश्चिन्त रहें, मैं गुप्तचरों द्वारा अभी सारा भेद लिये लेता हूं ।

(द्वारपाल का प्रवेश)

द्वारपाल—(नरेश को अभिवादन कर) प्रजापाल ! मेवाड़ के मंत्री भामाशाह का दूत द्वार पर उपस्थित है और एक अत्यन्त आवश्यक कार्यवश आपसे मिलने की अभिलाषा प्रकट करता है ।

मालवेंद्र—जाओ, उसे यहां अविलम्ब उपस्थित होने दो ।

(द्वारपाल का गमन)

मालवेंद्र—अभी हम जो प्रसंग चला रहे थे, वह स्वयं उपस्थित हो गया । अब भामाशाह के इधर आनेका उद्देश्य शीघ्र ही ज्ञात होगा ।

(अभिवादन करते हुए दूत का प्रवेश)

मंत्री—(दूत से) आइये, कहिये, आज यहां तक भटकने का श्रम कैसे उठाना पड़ा ?

दूत—मैं मेवाड़ के मंत्री भामाशाह के कार्य से यहां आया हूं । उन्होंने श्रीमान् महाराज की सेवा में यह पत्र प्रेषित किया है, इसके उत्तर के साथ आज ही लौटने का मुझे आदेश है । (पत्र-दान)

मंत्री—(पत्र का श्रीनाम पढ़ते हुये) आप अभी अतिथि-भवन में विश्राम कर मार्ग का श्रम दूर करें, पत्र का उत्तर आपको एक प्रहर उपरान्त प्राप्त हो जायेगा ।

दूत—जो आज्ञा । (गमन)

मालवेंद्र—मंत्रिवर ! भामाशाह ने क्या लिखा है ?

मंत्री—सुना रहा हूं

राजनीतिपारङ्गत मालव-नरेश !

पद-लोलुपी अनेक राजपूत-नरेशोंने अपनी स्वतंत्रता यवन-सम्राट के हाथ बेंच दी हैं। पर प्रणवीर महाराणा प्रतापसिंह ने अकबर की दासता स्वीकार न करने का दृढ़ संकल्प किया है। वे देश-धर्म और संस्कृति की रक्षा में प्राणपण से जुटे हैं। ऐसी दशा में उनका सहायक बनना प्रत्येक भारतीय नरेश का कर्त्तव्य है। आशा है आप अपने इस कर्त्तव्य के औचित्य का अनुभव कर स्वतन्त्रता-संग्राम के निमित्त अधिकाधिक निधि प्रदान करेंगे। अन्यथा हमें अपनी कार्य-सिद्धि के लिए अन्य उपाय का प्रयोग करना पड़ेगा, जिससे कदाचित् मालवा की शांति संकट में पड़े।

—भामाशाह

मालवेन्द्र — (पत्र सुनकर) भामाशाह की यह उद्दण्डता ? हमें धमकी देकर धन ऐंठना चाहते हैं ? नहीं, मैं कदापि धन देकर अपनी हीनता का प्रदर्शन न करूंगा। वरन् अपने पराक्रमसे इन्हें दण्डित कर इस उद्दण्डता का फल चखाऊंगा। मंत्रिवर ! लिखिये, मालवेन्द्र से किसी भी प्रकार की सहायता मिलना असम्भव है। यदि वे अपने को सकुशल रखना चाहते हैं तो जैसे आये हैं वैसे ही चुपचाप लौट जायें। अन्यथा मालवी सेनाबल प्रयोग कर उन्हें राज्य की सीमा से बाहर कर देगी।

मंत्री—अन्नदाता ! इतनी उत्तेजना की आवश्यकता नहीं, जये-च्छुक नृप की नीति और शक्ति ये दो भुजाएं हैं। इन दोनों में नीति

भामाशाह

श्रेष्ठ है। देखिये, नीतिवान् व्याध शक्तिशाली सिंह का भी वध कर देता है।

मालवेन्द्र—आपके इस कथन का विरोध मैं नहीं करता, पर स्वराष्ट्र के कण्टक को दण्डित करना भी नीति-शास्त्र की आज्ञा ही है।

मन्त्री—अवश्य, सिद्धि के लिये नीति-शास्त्र में साम, दाम, भेद और दण्ड ये चार उपाय वर्णित हैं। पर प्रारम्भिक त्रयी विफल होने पर ही अन्तिम—दण्ड-उपायके प्रयोग की सम्मति दी गयी है। कारण दण्ड के प्रयोग से सेना की हानि होती है, भेद के प्रयोग से कपटी होने का अपयश मिलता है। अतएव दाम का प्रयोग ही शासन के लिये हितकर है।

मालवेन्द्र—आपकी यह सम्मति शत्रुकी इच्छा का ही समर्थन करती है। मेरे विचार से दण्ड शत्रु के साथ दाम का प्रयोग उतनी ही मूर्खता है, जितनी वज्र से तोड़ने योग्य पर्वत पर पुष्प-वृष्टि। अतः दण्ड प्रयोग ही मुझे नीतिसंगत प्रतीत होता है।

मन्त्री—प्रजाप्रिय ! आवेग में दण्ड प्रयोग कर अपनी लोक-प्रियता न खोयें। मेघराज मधुर जल गिरा कर ही लोकप्रिय बनता है, वज्र गिरा कर नहीं। अतः भामाशाह को क्षमा कर दाम का प्रयोग ही हमारे लिये सुगम उपाय है।

मालवेन्द्र—मन्त्री ! मैं आपकी सम्मति से सहमत नहीं। क्षमा व्रत-धारियों का गुण है, तेजस्वी राजाओं का नहीं। हम तेजवान् दहकते अंगार हैं, सर्व साधारण के चरणों से कुचले जाने योग्य राख के ढेर नहीं। अतः अकारण हमारा अपमान करने को उद्यत भामाशाह के साथ दण्ड-नीतिका प्रयोग ही मेरी दृष्टि में उपयुक्त है।

मंत्री—किन्तु, यह भी विचारणीय है, कि भामाशाह का उद्देश्य हमें अपमानित करने का नहीं, मातृ-भूमि का उद्धार करने का है। इनकी भावनाएं स्वार्थ की गंध से दूषित नहीं, वरन देशभक्ति की उर्मियों से गंगाजल-सी पवित्र हैं। अतः इन्हें कुछ भेंट करना एक राष्ट्रीय यज्ञ में सहयोग देना कहलायेगा—अपनी हीनता का प्रदर्शन नहीं।

मालवेन्द्र—यदि वस्तुतः आपकी यह धारणा है तो मेवाड़-उद्धार के लिये कुछ निधि भेंट स्वरूप दे दी जाये। (कुछ रुक कर) कहिये, भेंट में कितनी धन राशि शोभास्पद होगी?

मंत्री—मेरे विचार से २५ लक्ष रुपये और २० सहस्र स्वर्ण-मुद्राएं पर्याप्त होंगी।

मालवेन्द्र—अब मैं आपके निर्णय में हस्तक्षेप न करूंगा। (कोषाध्यक्ष से) आप अभी ही कोषसे इतनी निधि ला कर इन्हें दे दें।

कोषाध्यक्ष—मैं अभी ही निर्दिष्ट भेंट लेकर आता हूँ। (गमन)

मालवेन्द्र—अमात्यवर! भामाशाह को भेंट देकर आप ऐसा प्रस्ताव करें जिससे वे मालवा की सीमा से चले जायें।

(एक स्वर्णथाल में रुपयों और स्वर्ण-मुद्राओं की थैलियाँ लिये कोषाध्यक्ष का आगमन)

मंत्री—(स्वर्णथाल ग्रहण करते हुए) स्वामिन्! मैं भामाशाह के शिविरों में जा रहा हूँ। कार्य-सिद्धि कर शीघ्र सेवा में उपस्थित होऊंगा। आप किसी अनिष्ट की शंका न करें।

मालवेन्द्र—जाइये, मुझे आपकी चातुरी पर पूर्ण विश्वास है।

(मंत्री का गमन)

पटाक्षेप

भामाशाह

दृश्य ६

स्थान—मालवा का सीमा प्रान्त

समय—सन्ध्या

(भामाशाह और ताराचन्द्र)

भामाशाह—ताराचन्द्र ! तुम्हारी युक्ति सफल हुई, मुझे आशा न थी कि मालव-नरेश इतनी सरलता से भेंट दे देंगे ।

ताराचन्द्र—वस्तुतः मालव-नरेश से धनराशि प्राप्त करना असंभव-सा था । पर उनके मंत्री की प्रेरणा के फलस्वरूप ही हमें यह राशि प्राप्त हुई है ।

भामाशाह—यद्यपि यह राशि यवन-सम्राट के आक्रमण निष्फल करने के लिये पर्याप्त नहीं, पर जो मिला है उसी पर सन्तोष करना ही बुद्धिमत्ता है ।

ताराचन्द्र—संतोष के सिवा अन्य उपाय ही क्या है ? पर यदि इसी प्रकार किसी अन्य नरेश से भी अर्थ-प्राप्ति हो जाती तो हम महाराणा के मनोरथ को मूर्तिमान करने में सफल हो जाते ।

भामाशाह—तुम्हारा कथन ठीक है पर मेरी दृष्टि में अब ऐसा कोई नरेश नहीं ।

ताराचन्द्र—अस्तु ! हमें अपना प्रिय मेवाड़ त्यागे अधिक दिन हो गये हैं । अतः अब मातृ-भूमि के दर्शन करने की उत्कण्ठा बलवती हो रही है ।

भामाशाह—महाराणा भी जाने किस दशा में दिन व्यतीत कर रहे होंगे ? उनके समाचार जाने बिना मुझे चैन नहीं पड़ता ।

ताराचन्द्र—चैन कैसे पड़े ? आप शैशव से ही महाराणा के साथ हर समय रहे हैं; दुःख और सुख में सदैव उनका साथ दिया है। अतः उन्हें विपन्नावस्था में त्याग चैन पाना असम्भव है। इसके अतिरिक्त महाराणा के दिन भी संकट में कट रहे होंगे। हमारे सामने ही उनकी समस्त शक्तियां क्षीण हो चुकी थीं। अब तक के अविरल संग्राम से वे और भी साधनहीन बन गये होंगे ?

भामाशाह—सम्भावना कुछ ऐसी ही है। चलो अब चल कर हम उनकी चिन्ताओं को घटाने का प्रयत्न करें।

पटाक्षेप

दृश्य ७

स्थान—मेवाड़ का चूलिया ग्राम

(महाराणा प्रतापसिंह और रामा सहाणी)

प्रतापसिंह—सहाणी ! भामाशाह को मालवा की ओर गये पर्याप्त समय हो गया, पर अभी तक नहीं लौटे।

रामा०—सम्भवतः अभीष्ट सिद्ध करने में अधिक समय लग गया होगा ?

प्रतापसिंह—हो सकता है, इसके अतिरिक्त यवन-सेना से भी आक्रान्त होने की सम्भावना है। कारण गुप्तचरों द्वारा शाहबाज खां के मालवा की ओर जाने के समाचार उपलब्ध हो रहे हैं।

रामा०—यदि वास्तव में भामाशाह ऐसी किसी विपत्ति के जाल में उलझ गये हैं, तो यह अत्यंत शोचनीय है।

भामाशाह

प्रतापसिंह—शोचनीय है ही, कारण निरन्तर होने वाले आक्रमणों में मेरे सभी वीर युद्ध की भेंट चढ़ चुके हैं। वेतनभोगी योद्धा रखने के लिये धन का अभाव है, ऐसी दशा में उन्हें कोई सहायता भेजना भी अशक्य है। अपनी यह विवशता ही चिन्ता की जननी बन रही है।

रामा०—चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं, भामाशाह और ताराचन्द्र दोनों बुद्धिमान तथा साहसी हैं। वे अपने कौशल से निरापद हो शीघ्र आ रहें होंगे।

प्रताप सिंह—भगवान एकलिंग करें आपकी वाणी सत्य निकले।

(द्वारपाल का प्रवेश)

द्वारपाल—प्रजापाल ! अमात्यवर भामाशाह और उनके भ्राता ताराचन्द्र मालवा से आ गये हैं और अब यहां पधार रहे हैं।

प्रताप सिंह—तुमने यह शुभ सम्वाद अवसर पर सुनाया, हम इसी सम्वाद की प्रतीक्षा कर रहे थे। (रामा सहाणी से) देखें भामाशाह को मालवा में क्या सफलता प्राप्त हुई है ?

(भामाशाह और ताराचन्द्र का अभिवादन करते हुए प्रवेश)

प्रतापसिंह—आइये ! आइये !! हम अभी आपके ही विषय में चर्चा कर रहे थे। इस समय आप दोनों को सकुशल सामने देखकर मुझे आनन्द हो रहा है। कहिये, कुशल है न ?

भामाशाह—अन्नदाता ! आपके श्री-चरणों के प्रसाद से सर्व कुशलता है।

प्रताप सिंह—मुझे विश्वास है कि आप अपना कार्य सिद्ध कर ही मेवाड़ आये होंगे ?

भामाशाह—आपका विश्वास सत्य है। मालव-नरेश से २५ लक्ष रुपये एवं २० सहस्र स्वर्ण-मुद्राएं भेंटस्वरूप प्राप्त हुई हैं, जो आपके चरणों में मेवाड़-उद्धार के लिये अर्पित हैं। (राणा के समक्ष स्वर्णताल-स्थापन)

प्रतापसिंह—साधुवाद ! वास्तवमें मुझे इस समय अर्थ की अत्यन्त आवश्यकता थी, कारण आपके प्रवास-काल में भी यवनों के आक्रमण अविराम होते रहे हैं। जिसमें मेरी समस्त जन-धन-शक्ति नष्ट हो चुकी है। आपसे प्राप्त यह सहायता अत्यन्त सामयिक रही, अब मैं कुछ दिनों तक यवनों से संग्राम कर सकूंगा।

ताराचन्द्र—स्वामिन् ! केवल जन-धन का ही विनाश हुआ है; इसके अतिरिक्त अन्य कोई अमांगलिक घटना तो नहीं घटी ?

प्रताप सिंह—नहीं, शेष कुशल है। परिवार की सुरक्षा में भील बन्धु सावधान हैं। मुझे कभी उनकी देख भाल करने का समय नहीं मिलता, पर श्री एकलिंग की कृपा से सभी अक्षत हैं।

भामाशाह—इसे सौभाग्य ही समझना चाहिये। (विषय परिवर्तन करते हुए) शासन-संचालन में किसी प्रकारकी अव्यवस्था तो उत्पन्न नहीं हुई ?

प्रताप सिंह—विशेष कुछ नहीं, आपके स्थान पर रामा सहाणी कार्य करते रहे हैं। अब आप अपने पद को पुनः स्वीकार करें। (रामा सहाणी से राज्य मुद्रा ले भामाशाह को अर्पण और भामाशाहका नतशिर हो मुद्रा-ग्रहण)

भामाशाह—(रामा सहाणी से) आप को मेरे अभाव में इतने दिनों

भामाशाह

तक मेरा कार्य करना पड़ा, इसके लिये मैं आपसे क्षमा चाहता हूँ।

रामा०—क्षमा क्या ! सूर्य के अभाव में दीपक प्रकाशदान करता ही है, पर सूर्य को दीप से क्षमा याचना की आवश्यकता नहीं होती।

प्रतापसिंह—अब यह विवाद रहने दो, अपने खोये हुए दुर्गोंको पुनः प्राप्त करने का प्रयत्न करो।

भामाशाह—मेरे विचार से सर्वप्रथम देवीर के दुर्ग पर आक्रमण करना ठीक होगा।

प्रतापसिंह—मेरा भी यही मत है, इस आक्रमण में मेरे साथ तुम्हें भी रहना पड़ेगा।

भामाशाह—मैं स्वयं ऐसा ही चाहता था।

ताराचन्द्र—क्या मैं भी देवीर पर आक्रमण करते समय आपके ही साथ रहूँ ?

प्रतापसिंह—नहीं, मेरे साथ भामाशाह पर्याप्त हैं। आप कुछ सैनिक लेकर मालवा की ओर जायें तथा यवन-सेना को इधर आने से रोकें।

ताराचन्द्र—जो आज्ञा। मैं शीघ्र मालवा की ओर प्रस्थान करूँगा।

पटोक्षेप



दृश्य ८

स्थान—बसी का बहिर्भाग ।

समय—संध्या ।

[अश्वारूढ़ ताराचन्द्र, पीछे से शाहवाज खां के एक सैनिक का प्रहार, ताराचन्द्र द्वारा प्रतिकार का प्रयास, दोनों के शरीर से रक्तस्राव, क्षत होने पर भी ताराचन्द्र का शस्त्र-संचालन, तुमुल संघर्ष, यवन सैनिक का जीवन संकटापन्न, ताराचन्द्र के रणचातुर्य और साहस से भयभीत हो उसका पलायन, आहत और श्रान्त ताराचन्द्र का मूर्च्छित होकर अश्व से भू पर पतन, इसी क्षण बसी के राव साईदास देवड़ा का वहाँ आगमन, ताराचन्द्र को अचेत देख विविध उपचारों से चेत में लाने का प्रयत्न, जल-सिंचन और शीतल समीरण के स्पर्श से नयनोन्मीलन और कराहते हुए उठने की असफल चेष्टा]

साईदास—वीर युवक ! अभी उठने का प्रयास मत करो, मैं तुम्हें सुरक्षित स्थान में ले चलने का प्रयत्न कर रहा हूँ ।

ताराचन्द्र—हे विपत्ति-बान्धव ! आप कौन हैं जो मुझ असहाय के प्रति इतनी सहानुभूति प्रदर्शित कर रहे हैं ?

साईदास—मैं बसी का राव साईदास देवड़ा हूँ, तुम्हें इस विपन्नावस्था में देख मुझे दुःख है; अतः तुम्हारी कुछ सेवा करना चाहता हूँ ।

ताराचन्द्र—आपके परिणाम अत्यन्त दयालु प्रतीत होते हैं । जो मुझ अपरिचित से भी इस प्रकार बन्धु भाव जताते हैं ।

साईदास—इसमें दयालुता क्या ? प्रत्येक दुखी के दुःख दूर करना मनुष्य का कर्तव्य है । अब आप मेरे दुर्ग में चलने की कृपा करें ।

भामाशाह

जब तक आपके क्षत ठीक न हो जायें तब तक आप मेरी परिचर्या स्वीकार करें। स्वस्थ हो जाने पर अपने देश चलें जायें।

ताराचन्द्र—इस स्थान में आपकी सहायता वरदान स्वरूप प्रतीत होती है। पर मेरा अश्व कहां है ?

साईदास—तुम्हारा स्वामिभक्त अश्व यह खड़ा है, इसी की पीठ पर तुम्हें बैठाकर दुर्ग में ले चलूंगा।

ताराचन्द्र—जब आप मुझपर इतना अनुग्रह कर रहे हैं, तब आपके अनुरोध को सहर्ष स्वीकार करना मेरा भी कर्तव्य है।

साईदास... (अश्व को ताराचन्द्र के सामने खड़ा कर) उठने का कुछ प्रयास करो, जिससे मैं तुम्हें अश्व पर आरूढ़ कर दूं।

(साईदास की सहायता से ताराचन्द्र का अश्व पर आरोहण, अश्व की रश्मि पकड़ साईदास का दुर्ग की ओर प्रस्थान)

पटाक्षेप



अङ्क ६

दृश्य १

स्थान—मेवाड़ का पर्वतीय प्रदेश ।

(महाराणा प्रताप सिंह और युवराज अमर सिंह)

प्रताप सिंह—अमर सिंह ! भामाशाह ने मालवा-नरेश से लाकर जो सम्पत्ति भेंट की थी, वह निरन्तर युद्ध-व्यय में समाप्त होती जा रही है । पर यवन-सेना के आक्रमण समाप्त नहीं हो रहे ।

अमर सिंह—यह आपका ही साहस है जो इतनी आपत्तियां सह कर भी सिद्धांत-रक्षा में अटल हैं । पर्वतकी गुहाएं आपके राजभवन, वृक्षों के पल्लव आपके स्वर्णपात्र और कठोर चट्टानें आपकी रत्न-शय्या बन रही हैं । इतनी कठोर तपस्या करने पर भी मेवाड़ का उद्धार नहीं हो पा रहा है ।

प्रताप सिंह—क्या किया जाये ? मेरे वश का जो भी है, मैं वह सब करता जा रहा हूं । यत्न करने पर भी यदि सिद्धि नहीं होती, तो इसमें किसे दोष दूं ?

अमर सिंह—पर इस प्रकार कष्ट सहने से भी मेवाड़ का उद्धार सम्भव नहीं ।

प्रताप सिंह—हो या न हो; पर मैं प्राण रहते अकबर की अधीनता स्वीकार नहीं कर सकता । आज भामाशाह अभी तक नहीं आये ?

भामाशाह

अमर सिंह—आते ही होंगे ।

(हस्त में एक पत्र लिये भामाशाह का आगमन)

प्रताप सिंह—आज आपके विलम्बका क्या कोई विशेष कारण है ?

भामाशाह—आपका अनुमान सत्य है । विशेष कारण के अभाव में मुझे आपकी सेवा में उपस्थित होने में विलम्ब नहीं होता ।

प्रताप सिंह—वह विशेष कारण क्या है ?

भामाशाह—मैं आपकी सेवा में आने को तत्पर ही हो रहा था, कि इतने में एक यवन-दूत यह पत्र लेकर द्वार पर आ मिला ।

प्रताप सिंह—यह पत्र किसका है ?

भामाशाह—यह पत्र अकबर के सेनापति मिर्जा खां का है ।

प्रताप सिंह—क्या लिखा है ? सुनाइये ।

भामाशाह—(पत्र खोल कर पढ़ते हुए)

मेवाड़ामात्य भामाशाह !

यवन सम्राट् ने मुझे एक विशाल यवनवाहिनी के साथ मालवा की ओर भेजा है । उनके आदेशानुसार आप यहां आकर शीघ्र ही मुझसे मिलें । आपके अविलम्ब मिलने से आप पर किसी भी प्रकार की आपत्ति नहीं आयेगी । अन्यथा आपके साथ ही महाराणा पर भी विपत्तियों का वज्र शीघ्र ही टूटेगा ।

—मिर्जा खां, यवन-सेनापति

प्रताप सिंह—(पत्र सुनकर) भामाशाह ! इस पत्र से प्रतीत होता है कि मेरी स्वाधीनता अकबर की कोपाग्नि को निरन्तर प्रचण्ड कर रही है और वह अपनी सम्पूर्ण शक्तियों के साथ मेरी स्वतन्त्रता अपहरण करने में निरत है ।

भामाशाह—इसमें अल्प भी सन्देह नहीं; पर अब विचारणीय यह है कि मैं मिर्जा खां से मिलूं या नहीं ?

प्रताप सिंह—यदि आप न जायें, तो क्या हानि है ?

भामाशाह—न जाने से अधिक अनिष्ट की सम्भावना है। कदाचित् अकबर स्वयं अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ हम पर आक्रमण कर बैठे।

प्रताप सिंह—यह सम्भव है। पर आपको मिलने के लिये वाध्य करने का उद्देश्य क्या होगा ?

भामाशाह—इस विषय में अभी कुछ भी नहीं कहा जा सकता, उससे मिलने पर ही वस्तुस्थिति का बोध होगा।

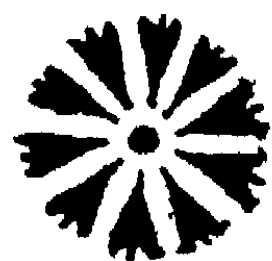
प्रताप सिंह—कहीं ऐसा न हो कि आपको एकाकी और असहाय देख कर राजबन्दी बनाने की उद्दण्डता करे।

भामाशाह—ऐसी संभावना नहीं है, कारण इस प्रकार की छलना राजनीति के विरुद्ध है। पर यदि अवसर आया भी तो मैं अपने कौशल से बन्धन-मुक्त हो आपकी सेवा में उपस्थित होऊंगा।

प्रताप सिंह—यदि आपको यह विश्वास है तो जाइये, पर शीघ्र ही लौट आने का प्रयत्न कीजिये। कारण आपकी उपस्थिति से मेरी चिन्ताओं का अर्द्धांश न्यून हो जाता है।

भामाशाह—ऐसा ही होगा। (गमनोद्यत)

पटाक्षेप



दृश्य २

स्थान—मालवा के यवन सैन्य-शिविर ।

समय—सन्ध्या ।

(मिर्जा खां और भामाशाह)

मिर्जा खां—भामाशाह ! आपको ज्ञात ही है कि आज हमारे सम्राट् अकबर की विजय-वैजयन्ती सम्पूर्ण आर्यावर्त में फहर रही है और देशके समस्त नरेश नतशिर हो उन्हें अपना अधिपति मानते हैं ।

भामाशाह—मानते हैं उसी प्रकार जिस प्रकार लघु आभामय नक्षत्र निशाकर को । पर तेजस्वी दिननाथ कभी भी उस कलंकी की अधीनता स्वीकार नहीं करता ।

मिर्जा खां—पर दिननाथ का यह अभिमान स्थायी नहीं रहता । सन्ध्या समय उसे भी अस्ताचल में मुख छिपाने के लिये बाध्य होना पड़ता है ।

भामाशाह—पर इससे सूर्य का स्वाभिमान दलित नहीं होता, कोई भी उसे तिरस्कार की दृष्टि से नहीं देख सकता ।

मिर्जा खाँ—केवल लोक-दृष्टि में स्वाभिमानी बने रहने के लोभ से सपरिवार कष्ट भोगना महाराणा की बुद्धिमत्ता नहीं ।

भामाशाह—खानखाना ! आप इसे नहीं समझ सकते । रजत-खण्डों पर अपना स्वाभिमान बेचने वाले सिद्धान्त का मूल्य आँकने में असमर्थ होते हैं ।

मिर्जा खाँ—मेवाड़ामात्य ! ऐश्वर्य-भोग, मान, प्रतिष्ठा आदि ऐसी

वस्तुएं हैं, जिनके समक्ष अटल से अटल सिद्धान्तवादी भी चञ्चल हो उठते हैं ।

भामाशाह—पर हमारे महाराणा ऐसे सिद्धान्तवादियों में से नहीं कि प्रतिष्ठा के चमकीले कांचके बदले स्वाभिमान का रत्न बेच दें ।

मिर्जा खाँ—(स्मिति पूर्वक) भले ही रत्न के इस लोभ में जीवन से हाथ धोना पड़े ?

भामाशाह—खानखाना ! मृत्यु के साथ क्रीड़ा करने वाले वीरों का मरण कभी भी नहीं होता । इसके विपरीत मृत्यु से भय खाने वाले कायर प्रतिक्षण मरते रहते हैं ।

मिर्जा खाँ—यह सब दार्शनिकता है, इसमें यथार्थता अल्प भी नहीं । क्षत्रिय यदि ऐसे उद्गार व्यक्त करें तो उचित भी है; पर वैश्य होकर आपके मुखसे ये विचार शोभा नहीं देते ।

भामाशाह—यवन वीर ! आपको यदि वीर-प्रसविनी मेवाड़-मेदिनी की गोद में जन्म लेने का सुयोग मिला होता; तो आप समझते कि वहां का जलवायु प्रत्येक शिशुमें क्षत्रियत्व की चेतना भरता है ।

मिर्जा खाँ—मेवाड़ का यह गुणगान रहने दीजिये और मैंने जिस कार्य के लिये आपको कष्ट दिया है, उसे सुनिये ।

भामाशाह—सुनाइये ।

मिर्जा खाँ—सम्राट अकबर की हार्दिक अभिलाषा है कि आप महाराणा को उनकी सेवामें लिवा लायें । इस कार्य के लिये वे आपको पर्याप्त धन-धान्य के साथ प्रतिष्ठित पद भी देने के लिये तत्पर हैं ।

भामाशाह—पर मैं इस प्रलोभन में पड़ स्वामिद्रोह का जघन्य

भामाशाह

पातक नहीं कर सकता । आप अपने स्वामि से कह दें कि वे अपने मनकी अभिलाषा मनमें ही रखें । भामाशाह से इसकी आशा न करें ।

मिर्जा खाँ—मित्रवर ! इस महान् प्रश्न के निर्णय में इतनी शीघ्रता न करें, यदि आप महाराणा को अकबर की सेवा में उपस्थित कर देंगे तो आप कई पीढ़ियों तक राजसी जीवन बिता सकेंगे और यह आपके लिये कोई दुष्कर कार्य नहीं ।

भामाशाह—दुष्कर ही नहीं, असम्भव है । यदि आपने मित्रता का व्यवहार भुक्त से न किया होता तो यहीं युद्ध का दृश्य उपस्थित हो जाता ।

मिर्जा खाँ—इतना उत्तेजित होने की आवश्यकता नहीं । यदि आप शीघ्रता में यथोचित निर्णय न कर पा रहे हों तो सोच विचार कर पुनः अपनी स्वीकृति दे दीजियेगा ।

भामाशाह—इस विषय में मुझे कुछ भी सोचने विचारने की आवश्यकता नहीं । मैंने जो उत्तर आपको दिया है वही मेरा अन्तिम निर्णय है ।

मिर्जा खाँ—इतना समझाने पर भी आप नहीं समझे ? जिस सम्राट की कृपा पाने के लिये अनेक नरेश लालायित रहते हैं, आज वही आपसे कृपा की भिक्षा मांग रहा है । पर आप इस प्रकार कृपणता प्रकट करते हैं, यह मूर्खता की चरम सीमा है ।

भामाशाह—खानखाना ! आपके इस वाक-भूचाल से मेरे सिद्धांतों का सौध कम्पित नहीं हो सकता । त्रिलोक की सम्पत्ति का लोभ भी भामाशाह को विचलित करने में असमर्थ होगा ।

मिर्जा खाँ—भामाशाह ! मुझे आपसे ऐसी आशा न थी । आपकी यह उपेक्षा महाराणा के लिये घातक ही सिद्ध होगी, यह भी आपको विचार लेना चाहिये ।

भामाशाह—विचार लिया है । समुज्ज्वल सिद्धान्तों के लिये इन्द्रका कोप भी घातक नहीं होता । महाराणा का अनन्त आत्मबल आपके सीमित सैन्य-बल से पराजित न होगा ।

मिर्जा खाँ—यह सब आपकी कल्पना मात्र है ।

भामाशाह—कल्पना नहीं, सूर्य के अस्तित्व के समान सत्य है । भविष्य स्वयं इसे प्रमाणित कर देगा । अब मैं यहां से बिदा होता हूं ।
(गमनोद्यत)

मिर्जा खाँ—जाइये, यदि आपकी विचारधारा में परिवर्तन हो, तो निःशङ्क मुझसे मिलकर सूचित कीजिये, मैं यह कार्य सम्पन्न करा दूंगा ।

भामाशाह —(जाते हुये) इसकी आशा न करें । दहकते अंगारसे संताप के स्थान पर शीतलता की आशा व्यर्थ है । (गमन)

पटाक्षेप



दृश्य ३

स्थान—गहन वनस्थली

समय—शरद की एक संध्या

[वसुधातल पर हरित दूर्वादल का संस्तरण, उस पर चमकते जलविन्दु, तरु-शाखाओं के गवाक्षों से भांकती हुई ज्योत्स्ना, गगन की नीलमस्थली में मुक्तादल के समान चमकते हुये नक्षत्र, यत्र तत्र क्षणिक ज्योति प्रदर्शित करते हुये खद्योत, गुहा के द्वार की एक शिला पर अर्द्धनिद्रित श्रान्त महारानी प्रतापसिंह, उनकी शुश्रूषा करती हुई महाराणी पद्मा और समीप ही लघुवयस्का राज कुमारी]

राजकुमारी—(महाराणी के कण्ठ से लिपट कर) माँ ! रोटी दो ।

पद्मा—(प्रेम पूर्वक) बेटी ! अभी-अभी तूने रोटी खायी थी, फिर मांगने आ गयी ?

राजकुमारी—(उभय करों से नेत्र मलते हुए) तुमने आधी रोटी ही दी थी जिसे खाये बड़ी देर हो गयी, अब पुनः भूख लग आयी है ।

पद्मा—(कृत्रिम क्रोध से) चल, बड़ी भूखवाली ! अभी सोजा, जो आधी रोटी शेष बची है वह सबेरे के लिये हो जायेगी ।

राजकुमारी—वह तुम अभी दे दो, मैं सबेरे नहीं मांगूंगी ।

पद्मा—(राजकुमारी को दूर करते हुए) चल हट, तू बड़ी हठीली है । एक बार के समझाने से नहीं मानती । अब शोर मत कर, अन्यथा महाराज की निद्रा भंग हो जायेगी ।

राजकुमारी—तब तो वे मुझे अवश्य रोटी दिला देंगे ।

पद्मा—मान जा, हठ मत कर । (प्रेमसे) आ, तुझे गोदी में सुला लूं ।

राजकुमारी—तुम रोटी दे दो, पुनः मैं उसे खाकर और निर्भर का जल पीकर सो जाऊंगी ।

पद्मा—(एक शिला के नीचे से आधी रोटी निकाल कर राजकुमारी को देते हुए) नहीं मानती, ले, मुझे क्या करना है ?

राजकुमारी—(रोटी लेकर) मां । इस पर घृत चुपड़ दो । तृण की रोटी रूखी नहीं भाती ।

पद्मा—(नेत्रों में अश्रु भर कर) बेटी ! यहां वन में घृत कहां ? इसे ऐसे ही खाले और पुनः उस निर्भर से जल पी लेना ।

(राजकुमारी द्वारा विवश हो रूखी ही रोटी का भक्षणारम्भ, ग्रास के मुख तक पहुंचने के पूर्व ही एक वन विलाव का आगमन, और रोटी छीन कर भाड़ियों की ओर पलायन, रोटी छिन जाने से राजकुमारी की लम्बी चीख, क्रंदन से महाराणा का जागरण)

प्रताप सिंह—(राजकुमारी को गोद में उठा कर) अरे ! अरे !! क्या हुआ ? बतला बेटी ! क्या बात है ? तू क्यों रोदन कर रही है ?

(राणा के प्रश्न करने पर भी राजकुमारी का मौन, केवल अंगुली से विलाव की ओर संकेत, परिस्थिति समझने में मेवाड़-उद्धारकी चिन्ता में लीन प्रताप की असमर्थता)

पद्मा—(रुदन पूर्वक) प्राणनाथ ! यह भूखी थी, खाने की कोई सामग्री थी नहीं । केवल आधी रोटी थी, वही मैंने उसे अभी-अभी इसे दी । रोटी लेकर इसके जाने पर क्षण भर उपरान्त ही इसकी चीख सुन पड़ी । अब देखती हूं कि इसके हाथमें वह रोटी भी नहीं ।

(राजकुमारी से) बतला बेटी ! तेरी रोटी कौन ले गया ?

(प्रश्न सुन रोटी खाकर आनन्द से बैठे हुए विलाव की ओर राजकुमारी का संकेत)

प्रताप सिंह—क्या यही विलाव तेरी रोटी ले गया है ?

राजकुमारी—(रोते हुए) मुझे बड़ी भूख लगी है । (पुनः रोदन)

प्रताप सिंह—(नेत्रों में अश्रु भर कर) प्रिये ! बेटी का करुण क्रन्दन सुनने की शक्ति मुझमें नहीं । जो हृदय शत्रु की तोपों और कृपाणों के समक्ष भी वज्रवत् कठोर रहा, वह आज बेटी के क्रन्दन से मोमवत् पिघल उठा है । जिन नेत्रों ने हल्दीघाटी में शत्रु-शोणित की सरितायें प्रवाहित होते देख एक बिन्दु अश्रु नहीं टपकाया; वही आज अश्रुओं की अजस्र वर्षा कर रहे हैं । इसका विलाप सहने की क्षमता मुझमें नहीं । यदि कोई खाद्य-पदार्थ हो तो, इसे देकर चुप कराओ ।

(महाराणा का आदेश सुन कर भी महाराणी का आंसू बहाते हुए पाषाणी मूर्तिवत् मौनावलम्बन)

प्रताप सिंह—(महाराणी को निरुत्तर देखकर) क्या कोई कन्द मूल भी नहीं जिससे इसकी क्षुधा शांत कर सके ?

(उत्तर में महाराणी का अजस्र रोदन)

प्रताप सिंह—हां ! आज मेवाड़ाधिपति के परिवार की यह दशा-- कि राजकुमारी की क्षुधा-निवृत्ति के लिये तृण की भी रोटी नहीं ! यह क्षुधा की ज्वाला में जल रही है और मैं सिद्धांत-रक्षा का व्रत लिये बैठा हूं । हे वीर प्रतिज्ञे ! तुझे लेकर क्या करूं ? स्वाधीनते ! तेरे चरणों पर अर्पित करने के लिये और क्या लाऊं ? मुझसे अपने ही हृदय के टुकड़े का यह रोदन नहीं देखा जाता । मैं अपने लिये नहीं, इन सुकुमार बच्चों के लिये आज वह करूंगा, जिसे करने की कल्पना मैंने स्वप्न में भी न की थी । कुछ भी हो, मैं अकबर से

संधि कर सारे दुःखोंका अंत किये देता हूं । अब इसके सिवा आपत्ति से मुक्त होने का मेरे पास कोई उपाय नहीं ।

(कागज, मसिपात्र और लेखनी ले महाराणा को संधिपत्र लिखने के लिए उद्यत देख सिंहनी सी खड़ी हो महाराणी का विघ्न करण, कागज छीन मसिपात्र का एक ओर प्रक्षेपन)

पद्मा—नाथ ! आप यह क्या करने जा रहे हैं ? आपने सम्पूर्ण जीवन स्वतंत्रता के संग्राम में बिताया और आज एक साधारण-सी पारिवारिक घटना के कारण यवन दास बन रहे हैं ? नहीं, नहीं, मैं यह कभी नहीं होने दूंगी । यदि आपही कायर बन यवनों से संधि कर बैठेंगे तो मेवाड़ की स्वाधीनता का भार कौन अपने माथे पर लेगा ? आपकी ही प्रण-पूर्ति में अनेकों वीर जननियों ने अपनी गोदी के लाल वार दिये । अनेकों नव बधुओं ने अपने प्राणाधार भेंटकर वैधव्य की यातनायें सहीं । अनेकों राजपूत वीरांगनाओं ने जौहर कर अपनी दुर्लभ देह अग्नि में भस्म की । आपकी ही प्राण रक्षा में चेतक ने अपने प्राण विसर्जन किये । इतने प्राणियों के प्राण लेकर आपको संधि-पत्र लिखने का अधिकार ही कहाँ ? यदि अविराम युद्धसे आपकी भुजाएं शिथिल हो गयी हों तो अपना खड्ग मुझे दीजिये, मैं रणचण्डी का रूप धारण कर मेवाड़-उद्धार का प्रयत्न करूँ ।

प्रतापसिंह—(महाराणी का कर अपने कर में लेकर) बस प्रियतम ! अधिक लज्जित मत करो । तुम-सी वीर-वल्लभा पानेका मुझे गौरव है । वस्तुतः आजकी पारिवारिक घटना से मेरी वीर-प्रतिज्ञा का पोत डगमगा चला था; स्वतन्त्रता के साधना-दीपकी लौ बुझ चली थी;

भामाशाह

रणोत्साह बिदा हो चला था; और मेरा प्रणवीर हृदय संधि-पत्र लिखने को उतावला हो उठा था—पर तुमने समय पर एक वीर नारी का कर्तव्य पालन कर मुझे पथभ्रष्ट होने से बचा लिया। अब मैं स्वयं अपने कुछ क्षण पूर्व के विचारों के लिये लज्जित हूं।

(इसी क्षण नेपथ्य से) अरे ! महाराणा कहां हैं ? उन्हें शीघ्र समाचार दो कि शत्रुओं को इस स्थान का भी ज्ञान हो गया है।

प्रतापसिंह—हा ! यह क्या विडम्बना है ? अभी एक विपत्ति से मुक्त नहीं हो पाया और यह अन्य वज्र शिर पर टूट पड़ा। सम्पूर्ण मेवाड़में केवल एक यही स्थान रह गया था, पर यह भी सुरक्षित नहीं। कहां जाऊं ? किसके आश्रय में रहूं ? अस्तु: चलूं देखूं जीवन-नाटक का आगामी दृश्य कैसा है ? सम्भव है मां मेदिनी अपनी इस अभागी संतान को गोद में कहीं आश्रय दे। (खड्ग उठा वहाँ से प्रस्थान, बच्चों के साथ महाराणी द्वारा महाराणा का अनुसरण)

पटाक्षेप

दृश्य ४

स्थान—मेवाड़ का एक ग्राम

समय—शीतकाल की एक संध्या

(ग्राम के बाहर पर्वत पर एक पूर्ण कुटी, उसीके सामने मेवाड़-उद्धार की चिन्ता में लीन महाराणा प्रतापसिंह और कुछ सामन्त, इसी समय एक गुप्तचर का आगमन)

गुप्तचर—(अभिवादन कर) महाराणा ! यवन इस स्थान को भी जान गये हैं। अतः यवन सेनापति अब्दुल रहीम खाँ खानखाना एक

विशाल दल के साथ इधर आ रहा है। अब यह स्थान शीघ्र ही त्याज्य है।

प्रतापसिंह—(सखेद) पर इसके अतिरिक्त अन्य गुप्त स्थान रहा ही कहां ? अतः अब मेवाड़ की सीमा त्याग अन्यत्र वास करना ही श्रेयस्कर है।

एक सामन्त—किन्तु स्वामिन् ! यहाँ से कहां जाना उचित होगा ?

प्रतापसिंह—इस स्थल को त्याग कर सिंधु नदी के पार चलेंगे और वहीं अज्ञात अवस्था में शेष जीवन व्यतीत करेंगे।

द्वितीय सामन्त—किन्तु महाराणा ! यदि आप इस स्वर्गादपि गरीयसी जन्म भूमि को त्याग चले जायेंगे, तो कौन इस असहायाको बंधन-मुक्त करेगा ? कौन विदेशियों के अत्याचारों से इसकी मर्यादा की रक्षा करेगा ? अतः मेरी प्रार्थना है कि यहीं रह कर आमरण मेवाड़-उद्धार का प्रयत्न किया जाये।

प्रतापसिंह—सामन्तवर ! आपकी प्रार्थना अनुचित नहीं, पर धन और सेना के अभाव में मेवाड़ का उद्धार असम्भव है। ऐसी दशा में यहां पड़े रहना मां मेदिनी के ही भार की वृद्धि करना है।

तृतीय सामन्त—यदि आप मेवाड़-त्याग में ही कल्याण का अनुभव करते हैं, तो यही मार्ग अपनाया जाये। पर इस जन्म-भूमिको त्यागने का विचार करते ही अन्तरात्मा रो उठती है।

प्रतापसिंह—आपसे अधिक पीड़ा मुझे स्वभूमि त्यागने में होती है। पर विवश हूं, प्रतिकूल परिस्थितियों ने सफलताके सभी द्वार बन्द कर दिये हैं। अतः अब जीवन के अन्तिम दिनों में शांति लाभ करने

भामाशाह

का एक मात्र यही उपाय है । (सामन्तों से) आप सब महानुभाव जायें और अन्य सामन्तों को भी मेवाड़ त्यागने की सूचना दे दें । मैं भी सपरिवार तत्पर हो रहा हूँ ।

(सामन्तों का गमन)

पटाक्षेप

दृश्य ५

स्थान— मेवाड़ का सीमा प्रान्त

(चित्तौड़ की ओर श्रद्धापूर्वक देखते हुये अरावली शैल शिखर पर आरूढ़ प्रतापसिंह, समीप ही महाराणी पद्मावती, राज-सन्तानें और सामन्तगण)

प्रतापसिंह—(मातृ भूमिको शीश झुकाकर) बप्पा रावल और संग्राम सिंह की वीर भूमि ! तेरा यह कुपुत्र तुझे शत्रुओं की बन्दिनी बनानेसे न बचा सका । अब यवन-दल का बन्दी बनना या उनके द्वारा मरण ही शेष है । पर इनसे भी तेरा उद्धार संभव नहीं । अतः विवश हो बिदा लेता हूँ । मां ! मेरी अकर्मण्यता को क्षमा कर और अपने वरद हस्त उठा कर आशीष दे कि एक बार पुनः तेरा स्वतन्त्र अंचल मुझे आश्रय दे । (शिखर से नीचे उतर सहचरों से) विपत्ति के सहचरों ! मैं कितना कायर हूँ जो अकर्मण्य बन मातृ-भूमि से बिदा ले रहा हूँ ? मेरे साथ आप सब को भी प्रिय मेवाड़ छोड़ना पड़ रहा है ।

एक सामन्त—महाराणा ! मेवाड़-वासियों के भाग्य-विधाता होकर आप यह क्या कह रहे हैं ? आपके पथका अनुसरण ही हमारा प्रमुख कर्त्तव्य है । आपने हमारी रक्षा के लिये समस्त सांसारिक सुखों की

आहुति दे दी । वस्तुतः आपके समान स्वदेश-भक्तसे अभागा इतिहास शून्य है । अतः आपका खेद प्रकट करना अकारण है ।

प्रतापसिंह—वीरवर ! मेरी निर्बल भुजाएं देश-रक्षा करने में असमर्थ रहीं । यदि अन्तिम धन—इस तन की आहुति भी स्वतन्त्रता को अक्षुण्ण रख सकती तो मेवाड़ त्यागने का विचार न करता । पर आज मैं जन्म-भूमि को शत्रुओं की बन्दिनी बना अज्ञातवास करने जा रहा हूँ, यही शूल मेरे अन्तर को विदीर्ण कर रहा है ।

द्वितीय सामन्त—पर नाथ ! आपने अन्य नरेशों के समान प्रलोभन में पड़ स्वतन्त्रता नहीं बेंची है, जो आप इसके लिये पश्चात्ताप करें । अपनी मातृ-भूमि के प्रति आपने जितना कर्त्तव्य निभाया है, उतना कर्त्तव्यनिष्ठ इस वसुधापर न अवतरित हुवा है और न होगा । भविष्य में यदि धर्म भाग्य को अपने चरणों पर झुका सका तो मेवाड़ के नभ-मण्डल में पुनः शिशोदिया वंश की जय-पताका को फहरते सूर्य और चन्द्रमा देखेंगे । उस समय मेवाड़का अभिमानी राजसिंहासन अपने क्रोड़ में आपकी निष्कलंक देह को बैठा कर गौरवान्वित होगा ।

प्रतापसिंह—सामन्तवीर ! आप यह यथार्थ कहते हैं । इसके अतिरिक्त अब मेरे नेत्र मातृ-भूमि की अधिक दुर्दशा देखनेमें असमर्थ हैं । इसी कारण विदेश वास करने जा रहा हूँ जिससे मातृ-भूमि पर होने वाले यवनों के अत्याचार दृष्टिगोचर न हों । चलो, विलम्ब करना उचित नहीं ।

(साश्रुनयनों से चित्तौड़ की ओर देख गमनोद्यत, इसी क्षण दूर से अश्व दौड़ाते हुये भामाशाह का आगमन)

भामाशाह

भामाशाह—(नेपथ्य से) हे मेवाड़-मुकुट ! हे साकार स्वातंत्र्य !! रुकिये, ठहरिये !! मेरी अन्तिम प्रार्थना सुनने की कृपा कीजिये ।

प्रतापसिंह—(अश्व की रश्मि खींच कर) भामाशाह भागे आ रहे हैं । (सामन्तों से) आप सब अपने अश्व यहीं रोक उनके आगमन की प्रतीक्षा करें ।

(आदेश पाते ही समस्त अश्वारोहियों का स्थगन, निकटस्थ भामाशाह का अश्व से उतर महाराणा के चरणों में नमन, प्रतापसिंह का भी अश्व से उतर भामाशाह को आलिंगन)

प्रतापसिंह — (सजल नयन होकर) मंत्रिवर ! आपका हृदय आज इतना अधीर क्यों हो रहा है ? नयनों से अश्रुओं की मन्दाकिनी क्यों प्रवाहित हो रही है ? आपकी अधीरता का कारण जानने को मेरा हृदय व्याकुल हो रहा है ।

भामाशाह—मेवाड़ के मूर्तिमान् भाग्य ! धनाभावसे आपका मेवाड़-त्याग ही मेरी अधीरता का कारण है । मेरी कृतघ्नता का ही यह भयंकर फल है । भगवान् ! मेरी वाणी अपने स्वामीको इस प्रकार जानेसे क्यों नहीं रोकती ? उन्हें स्वभूमि त्याग करते देख नेत्र फूट क्यों नहीं जाते ? महाराणा ! आपके वियोग की कल्पना से मुझे अपना जीवन निरर्थक प्रतीत होता है ।

प्रताप सिंह—किन्तु भामाशाह ! आपका इसमें कोई दोष नहीं । भाग्य के रुष्ट हो जाने पर सभी प्रयास निष्फल हो जाते हैं । इसके अतिरिक्त आप मेवाड़-उद्धार के लिये प्रत्येक सम्भव प्रयत्न कर चुके हैं ।

भामाशाह—नहीं, मेवाड़ के प्राण ! मैं कुछ भी नहीं कर सका ।

आप का ही लवण खाकर मेरे शरीर का प्रत्येक परमाणु पुष्ट हुआ है । आप की ही कृपासे मेरे परिवार ने देव-दुर्लभ सुख भोगे हैं और आज आप स्वर्ग सदृश मेवाड़ त्याग मरुभूमिकी शरणमें जायें ? आपके सुकुमार वन वन की लकड़ियां चुनें ? ऐश्वर्य की गोद में पलनेवाली महाराणी पर्वतोंकी कंदराओंमें ठोकरें खायें ? और मैं अपनी मातृभूमि में ही धनी-मानी बनकर ऐश्वर्य भोग करूं ? उपकारी स्वामी की सेवा त्याग आनन्द में मग्न रहूं ? विदेशी और विजातीय नरेश का नागरिक बन कर विलासमय जीवन व्यतीत करूं ? नहीं ! नहीं !! नहीं !!! मेरी आत्मा इसे स्वीकार नहीं करती ! धिक्कार है ऐसे ऐश्वर्यको ! धिक्कार है ऐसे आनन्द को !! और धिक्कार है ऐसे विलास को !!!

प्रतापसिंह—किन्तु भामाशाह ! नियति का यह व्यतिक्रम अकाट्य है । भाग्य की अबाध गति को प्रतिकूल दिशामें मोड़ने की क्षमता किसी में नहीं । उसकी लेखनी से लिखित यह ललाट-लिपि नहीं मिटायी जा सकती ।

भामाशाह—मिटायी जा सकती है नाथ ! प्रयत्न करने से असम्भव सम्भव हो जाता है, असाध्य साध्य हो जाता है और अप्राप्य भी प्राप्य हो जाता है । अतः इस अन्तिम अवसर पर मेरी एक प्रार्थना अवश्य सुन लें ।

प्रतापसिंह—एक नहीं, अनेक सुन सकता हूं । कारण मुझे विश्वास है कि आपकी प्रार्थना मेवाड़-उद्धार की समस्या का कुछ समाधान अवश्य करेगी ।

भामाशाह—कृपासिन्धो ! कृपया मरुभूमि को उन्मुख खड़े हुये

भामाशाह

अश्वों को मेवाड़ की ओर मोड़ दीजिये । मैं अपनी समस्त पूर्वजो-
पार्जित सम्पत्ति मेवाड़-उद्धार के लिये आपके चरणों में अर्पित करता
हूँ । इसके अतिरिक्त सु-अवसर धन के सदुपयोग का और क्या हो
सकता है ? अनुमानतः इस धनराशिसे २५ सहस्र सेनाका १२ वर्षका
व्यय चल सकेगा । नाथ ! मेरी अन्तरात्मा बोलती है कि शीघ्र ही
मेवाड़के दुर्गों पर यवन-ध्वजों के स्थान पर केशरिया ध्वज फहरेंगे ।

प्रताप सिंह—(साश्चर्य सामन्तों को देखते हुये) भामाशाह ! आपकी
यह अनुपम उदारता मुझे चकित कर रही है । पर आपके पैतृक धन
को अपने लिये स्वीकार करना न्याय संगत नहीं ।

भामाशाह—(आवेश पूर्ण स्वर में) महामना ! मेवाड़ के महाराणा के
रूप में आप ही मेरी पूर्वजोपार्जित सम्पत्ति के यथार्थ स्वामी हैं । मैं
एक साधारण रक्षक-सा अब तक रक्षा करता रहा हूँ । अब आप
उसे स्वीकार कर निश्चिन्त करें ।

प्रतापसिंह—(हर्ष पूर्वक) मंत्रिवर ! आपकी पूर्वजोपार्जित सम्पत्ति
पर मेरा कोई अधिकार नहीं है ।

भामाशाह—महाराणा ! यह आपके निःस्वार्थ हृदय की उदारता
है । पर मेवाड़ मेरी जन्म-भूमि है, इसीकी धूलसे धूसरित हो मेरे
शैशव ने अठखेलियां की है । इसीके सुर-नर-किन्नर-मोहक भातावरण
में मेरे यौवन ने अपने रंगीन स्वप्न साकार किये हैं । इसीके जलवायु
से सत्व ले यह वृद्ध शरीर आज भी अपना अस्तित्व रखने में समर्थ
है । अतः इसके उद्धार के निमित्त त्रिभुवन की सम्पदा देकर भी
उत्क्रुण नहीं हो सकता । कृपया मेवाड़-उद्धार के लिये मेरी यह लघुभेंट
स्वीकार करने में अब कोई आपत्ति न करें ।

प्रतापसिंह—दानवीर ! आप धन्य हैं ! जिस धनके लिये कैकेयी ने पुत्रवत् राम को चतुर्दश वर्ष के लिये बनवास दिलाया, जिस धन के लिये स्वार्थी मुआ ने अपने भ्रातृज भोज का बध करने की योजना बनायी; जिस धन के लिये बनवीर ने अबोध राज्याधिकारी उदय-सिंह की जीवन-लीला समाप्त करने का असफल प्रयास किया—सात पीढ़ियों द्वारा संचित वह धन आप तृणवत् अर्पण कर रहे हैं । आपकी इस देवोपम उदारता के लिये अनायास मेरे हृदय से कोटि-कोटि साधुवाद निकल रहा है । इस अमूल्य और सामयिक सहायतासे यदि मेवाड़-उद्धार हुआ तो उसके सम्पूर्ण यश के भागी आप ही होंगे ।

भामाशाह—(नम्र होकर) गुणाकर । इस साधारण कर्तव्य-पालन के लिये इतनी प्रशंसा आवश्यक नहीं । आपकी स्वीकृति ही मेरा महासौभाग्य है, अपने धन के सदुपयोग की कल्पना ही मेरी हार्दिक प्रसन्नता के लिये पर्याप्त है ।

प्रतापसिंह—भामाशाह ! आपका औदार्य और त्याग मुझे नवीन चेतना दे रहा है । अतः मैं मेवाड़-उद्धार के लिये दृढ़-प्रतिज्ञ होता हूँ । (सामन्तों से) मेरे वीर सहचरों ! भामाशाह की इस विपुल सहायता ने हमारी समस्त कठिनाइयाँ दूर कर दी हैं, अब हमें अपने कर्तव्य-पालन के लिये कटिबद्ध होना है । अतः चलो युद्ध के साधन एकत्रित कर विजय-यात्रा को तत्पर हों ।

('महाराणा प्रताप सिंह की जय' 'मेवाड़-मेदिनी की जय' 'दानवीर भामा-शाह की जय' आदि जय ध्वनियाँ करते हुए सबका मेवाड़ की ओर प्रत्यावर्तन)

पटाक्षेप

दृश्य ६

स्थान—महाराणा का एक सैन्य शिविर ।

(महाराणा प्रताप सिंह और भामाशाह)

प्रतापसिंह—भामाशाह ! आपकी सहायता मुझे वरदान-स्वरूप ही सिद्ध हो रही है । आपकी लक्ष्मी से पाणि-ग्रहण कर मेरा पौरुष कृत-कृत्य हो रहा है । सोते, जगते यही आभास होता है कि विजय-श्री नीराजन पात्र लिये मुझे जय-तिलक करने आ रही हैं ।

भामाशाह—यह आभास मिथ्या नहीं, निकट भविष्य में ही हम इसे मूर्तिमान् देखेंगे ।

प्रतापसिंह—मुझे प्रारम्भ से ही सफलता के संकेत मिल रहे हैं, शेरपुर पर आक्रमण हेतु जाते समय अमरसिंह को अनेक शुभ शकुन हुए । अतः विजय-प्राप्ति अवश्यम्भावी है ।

भामाशाह—यवन सैनिकों की उपेक्षा भी हमारी सफलता की सहायिका बन रही है । वे हमें निर्बल और असहाय समझ मद्यपान और नृत्यगान में मग्न हैं ।

प्रताप सिंह—अब चतुर्दिक से परिस्थितियां हमारे अनुकूल बनती जा रही हैं, शेरपुर के युद्ध-फल से हमारे भविष्य का निर्णय हो जायेगा । देखें, अमरसिंह विजय-सन्देश लेकर आते हैं या नहीं ?

(इसी क्षण एक सैनिक का प्रवेश)

सैनिक—महाराणा ! शेरपुर विजय कर युवराज विजय-सन्देश देने आ रहे हैं । (गमन)

(अमर सिंह का आगमन)

अमर सिंह—दाजी राज ! प्रथम प्रयास में ही आपके प्रसाद से सफलता मिली। थाने पर यवन-सैनिकों की अल्प संख्या सिद्धि का कारण रही। मैं केशरिया ध्वजारोहण कर और रक्षा-भार विश्वस्त सैनिकों को सौंप विजय-संदेश देने आया हूं।

प्रताप सिंह—(हर्ष पूर्वक) साधुवाद ! प्रथम प्रयास की सफलता भावी युद्धों में भी सफलता की सूचना देती है। मन्त्रिवर ! कहिये, भावी युद्ध-कार्यक्रम के विषय में आपकी क्या सम्मति है ?

भामाशाह—मेरे विचारों से यवनों द्वारा विजित अन्य दुर्गों पर भी शीघ्र ही आक्रमण किया जाये। कारण अभी शत्रु दल सचेत नहीं हो पाया, उनकी यह असावधानी स्वर्ण में सुगन्धि बन रही है।

प्रताप सिंह—अभी हमें ज्ञात नहीं हुआ है कि खानखाना कहाँ हैं ? पर उसकी विशाल वाहिनी का सामना करने में अभी हम समर्थ नहीं। अतः देलवाड़ा का ही दुर्ग विजित किया जाये। कारण शाहवाज खां की अल्प-संख्यक सेना सुगमता से पराजित हो सकेगी।

भामाशाह—यह योजना सुन्दर है, इसके अनुसार देलवाड़ा के दुर्ग के साथ कुम्भलमेर के उस दुर्ग पर भी अधिकार हो जायेगा; जिसके अधिकारमें होने से यवनों के प्रयास विफल करने में सुगमता होगी।

प्रताप सिंह—यही निश्चय उत्तम है, आप शीघ्र ही सैन्य सुसज्जित कराइये। आक्रमण में विलम्ब अवांछनीय है।

भामाशाह

भामाशाह—मैं अभी ही सेनापति को वीर योद्धाओं के साथ देलवाड़ा की ओर प्रयाण करने का आदेश देता हूँ। इस आक्रमण में मैं भी आपके साथ ही रहूंगा।

प्रताप सिंह—अवश्य रहिये, मैं युद्ध-वेष से सज्जित हो रहा हूँ। आप भी शस्त्रास्त्रों से अलंकृत हो शीघ्र आइये।

भामाशाह—मैं अभी आया। (गमन)

पटाक्षेप

दृश्य ७

स्थान—दिल्ली का राजभवन।

(अकबर और खानखाना)

अकबर—(चिन्तित स्वरमें) उदयपुरसे प्राप्त संवादसे मैं विस्मित और उद्विग्न हो रहा हूँ। महाराणा को अपने चरणों पर नत देखने की मुझे उत्कट लालसा थी, पर अब इस लालसा का स्वप्न से अधिक महत्व नहीं। महाराणा के स्वामिभक्त मंत्री ने अपनी पूर्वजोपार्जित सम्पत्ति मेवाड़-उद्धार के लिये भेंट कर दी है। समाचार है कि उस सम्पत्ति से २५ सहस्र सेना का १२ वर्ष का व्यय चलेगा। इतनी उदारता और स्वामिभक्ति मैंने संसार में नहीं देखी, प्राचीन इतिहास में भी इसकी समता का उदाहरण नहीं है।

खानखाना—यवन सम्राट! आपका कथन सत्य है। भामाशाहकी असीम सहायता से ही उत्साहित हो महाराणा सैन्य-वृद्धि में जुटे हैं।

निरंतर राजपूत वीर और साहसी भील उनके दल में प्रविष्ट होते जा रहे हैं ।

अकबर—निस्सन्देह; भामाशाह की इस सहायता ने अमृत में विष घोल दिया । सम्भवतः अब महाराणा अपने सभी दुर्ग हमसे छीनने के प्रयत्न में होंगे । पर शाहवाज खां ने कोई सम्वाद नहीं भेजा ?

(द्वारपाल का प्रवेश)

द्वारपाल—(अभिवादन कर) सम्राट ! उदयपुर से एक सैनिक कुछ समाचार लाया है, वह आपसे मिलने का अभिलाषी है ।

अकबर—जाओ, उसे यहां शीघ्र उपस्थित होने दो ।

द्वारपाल—जो आज्ञा ! (गमन, क्षणोपरान्त एक यवन-सैनिक का प्रवेश) ।

सैनिक—(अभिवादन कर) मैं एक अशुभ सम्वाद लेकर आया हूं । अपने मन्त्री से प्राप्त सहायता के बलसे महाराणा ने उदयपुर पर अधिकार कर लिया है ।

अकबर—यह महा अनर्थ हुआ । तुम शीघ्र आदि से अन्त तक पूर्ण विवरण सुनाओ ।

सैनिक—यवनेन्द्र ! सर्व प्रथम महाराणा के युवराज अमरसिंह ने आक्रमण कर शेरपुर पर अधिकार कर लिया, पुनः महाराणा और उनके मन्त्री ने देलवाड़ा के दुर्ग को भी घेर लिया ।

अकबर—क्या देलवाड़ा दुर्ग पर शाहवाज खां और उनके सैनिक नहीं थे ?

सैनिक—थे, वरवीर राजपूतों ने हमारे सैनिकों को क्षणमात्र में मृत्यु की गोद में सुला दिया । महाराणा के मन्त्री के प्रहारसे शाहवाज

भामाशाह

खां का खड्ग टूट कर भूमि पर गिर पड़ा। पर धन्य है मन्त्री का न्याय युद्ध ! उन्होंने शत्रु को भी निःशस्त्र देख कर प्रहार नहीं किया। यों देलवाड़ा विजय के उपरान्त कुम्भलमेर दुर्ग के सूबेदार का बध कर उसे भी ले लिया। यों ३२ दुर्गों पर केशरिया ध्वज फहरने लगे हैं। अब चित्तौड़ और माण्डलगढ़ के अतिरिक्त सम्पूर्ण मेवाड़ शत्रुके अधीन हो गया है। मैं कठिनता से प्राण बचाकर श्रीमान् को समाचार देने आ पाया हूं।

अकबर—(सक्रोध) खानखाना ! कई लक्ष रुपये और सहस्रों सैनिकों की आहुति के फलस्वरूप जिस मेवाड़ पर यवन-पताका फहर सकी थी, आज पुनः उसी मेवाड़ पर मेरा अधिकार नहीं रह गया। यह पराजय मुझे शूल-सी चुभ रही है। कहिये, इस सन्ताप का क्या उपचार किया जाये ?

खानखाना—यवनेन्द्र ! भामाशाह की सहायता और हर दुर्गों की विजयसे महाराणा शक्तिशाली हो गये हैं। अब उन्हें पराजित करना असम्भव ही है, अतः इस विषय में चिन्ता न करना ही श्रेयस्कर है।

अकबर—पर जिससे आजीवन शत्रुता निभायी, उसे ही सानन्द शासन करते देख मेरे हृदय की दशा विचित्र हो रही है। सारा संसार क्या मेरी निन्दा न करेगा ?

खानखाना—नहीं, प्रताप के समान साहसी और वीर व्यक्ति से संग्राम करने में निन्दा हो सकती है, संग्राम रोकने में नहीं।

अकबर—(नेपथ्य से अजान का शब्द सुन) अब नमाज का समय हो गया है, अतः अब कल इस विषय पर पुनः विचार होगा।

पटाक्षेप

दृश्य ८

स्थान—उदयपुर

(विजयोत्सव के उपलक्ष में आयोजित सभा के लिये सुसज्जित विशाल कक्ष, एक ओर मध्य में महाराणा और युवराज के लिये रिक्त सिंहासन, अन्य ओर पार्श्व में एक आसन पर भामाशाह, राज्य के राजपूत सामन्त, भीलनायक, विद्वज्जन और गण्यमान्य नागरिक, सभा भवन के पार्श्व के कक्ष में महाराणी पद्मावती तथा नगर की अन्य प्रतिष्ठित महिलाएँ, महाराणा प्रताप सिंह और युवराज अमरसिंह का अंगरक्षकों के साथ सभा-भवन में प्रवेश, सभा-भवन के चारों ओर स्थित सैनिकों द्वारा कोष से खड्ग निकाल अभिवादन, महाराणा और युवराज के आसन ग्रहण करने पर एक गायिका का वीणा-वादन-पूर्वक गाना)

सजा लो, सखि ! पूजन का थाल !

हुवा फिर उन्नत मां का भाल ॥

विवश राणा के चिर प्रस्थान-

समय में भामा का धनदान,

बना दानी प्रभुका वरदान ।

सजा दल, पायी सिद्धि महान ।

पिन्हायी जय श्री ने वरमाल,

सजा लो सखि पूजन का थाल ॥

फले फूले शासन की बेलि,

करे सुख शान्ति यहां नव केलि,

सदा हों 'राणा' से ही भूप ।

चतुर 'भामा' से सचिव अनूप ॥

भामाशाह

तथा 'मन्नासिंह' से सब लाल ।

सजा लो सखि ! पूजन का थाल !!

हुवा फिर उन्नत मां का भाल ।

(गीत की समाप्ति पर भवन में पूर्ण शान्ति और महाराणा का अभिभाषण)

प्रतापसिंह—(खड़े होकर) स्वतन्त्र मेवाड़के भाग्यशाली नागरिकों !
जिन वीर-योद्धाओं की अमूल्य सहायता से यह विजयोत्सव मनाने
का सुयोग मिला है उन्हें उनके त्याग का उचित श्रेय देना ही आज
के आयोजन का अभिप्राय है । इसमें मेवाड़-उद्धार का सर्वाधिक श्रेय
भामाशाह को है । इनकी इस महानता का सम्मान करना संसार में
गुणों की प्रतिष्ठा बढ़ाना है । अतएव शासन की ओर से इन्हें कई ग्राम
वंश-परम्परा के लिये प्रदान किये जाते हैं । साथ ही इन्हें प्रथम श्रेणी
के सामन्तों में स्थान देकर भाटकपट ताजीम, पैर में सोने का लंगर
और पाग में माक्का अलंकृत करने का अधिकार भी प्रदत्त होता है ।
इसके अतिरिक्त मेरी यह भी घोषणा है कि मेरे वंशज सदा इनके वंशजों
को शासन के मंत्री-पद पर प्रतिष्ठित करें तथा मेरा एक प्रस्ताव यह
भी है कि मेवाड़ के इतिहास में इनको मेवाड़ के भाग्य-विधायक और
इनके वंशजों को मेवाड़ के उद्धारकर्त्ता के रूप में स्मरण किया जाये ।
आशा है आप सर्व सम्मति से इस प्रस्ताव को मान्यता देंगे ।

सब—(भवन के चारों ओर से) हम सब सहमत हैं, भामाशाह के
प्रति किया गया प्रत्येक सम्मान न्याय है ।

प्रतापसिंह—(पुनः) इस दीर्घकालीन राष्ट्र-यज्ञ में भालो कुल
तिलक राजा मानसिंह आदि जिन जिन वीर-योद्धाओं ने प्राणार्पण

किये हैं; उनके बंशजों को धन धान्य ग्राम आदि से पुरस्कृत करनेकी भी घोषणा करता हूं। (भामाशाहसे) अमात्यवर ! मेरे प्रिय अश्व चेतक के शव गिरने के स्थान पर भी एक सुन्दर समाधि शीघ्र ही बनवा दें और प्रति वर्ष उसके सम्मानार्थ मेला भरवाने की भी व्यवस्था करें।

भामाशाह—अत्यन्त शीघ्र ही आपके आदेशानुसार समाधि का निर्माण-कार्य आरम्भ हो जायेगा।

प्रतापसिंह—अब मैं भगवान एकलिंग की जय बोल कर यह कर्तव्य समाप्त करता हूं। (महाराणा का आसन ग्रहण, 'भगवान एकलिंग की जय' 'महाराणा की जय' 'स्वतन्त्रता देवी की जय' आदि जय-ध्वनियां)

भामाशाह—(शान्ति होने पर आसनसे उठकर) वीरावतार महाराणा ! और वीरता-प्रिय सामन्तों ! हमारे गुण-ग्राहक महाराणा ने अभी जो उद्गार प्रकट किये हैं, ये निस्वार्थ और उदार हृदय के प्रतीक हैं। वस्तुतः मैंने कर्तव्य-पालन के अतिरिक्त कुछ भी नहीं किया ! मेवाड़-उद्धारका श्रेय तो उन्हें है, जो विजय-प्रासाद के निर्माण में नींव के पत्थर बन सदा के लिये सो गये। फिर भी अपने लघु अर्थार्पण के लिये महाराणा प्रदत्त यह महत् मान मैं सेवक-भाव से स्वीकार करता हूं। और देश सेवा में ही शेष जीवन व्यतीत करने का संकल्प करता हूं। महाराणा की साधना, त्याग और तपस्या से प्राप्त यह स्वतन्त्रता अक्षुण्ण रहे। यह मंगल कामना करते हुये मैं अपना आसन ग्रहण करता हूं। (भामाशाह के आसन ग्रहण करने पर 'महाराणा की जय' 'मेवाड़ के उद्धार कर्ता की जय' और 'जननी जन्म भूमि की जय' आदि ध्वनियों पूर्वक सभा की समाप्ति)

पटाक्षेप

अङ्क ७

दृश्य १

स्थान—सादरी में ताराचन्द्र का निवास

समय—सन्ध्या

(ताराचन्द्र और नैनूराम)

ताराचन्द्र—जिस दिन से राजपूत-यवन-संग्राम प्रारम्भ हुआ, उस दिन से कभी संगीत-सुधा से मनोरंजन करने का अवसर नहीं मिला। अहर्निश की युद्ध-विभीषिका से सौन्दर्य-परीक्षण का अभ्यास भी लुप्त-प्राय हो गया है। अब इस शान्ति-कालमें कला-प्रेम की शुष्क वाटिका पुनः सरस करना है।

नैनूराम—अवश्य करिये, नियति के क्रम इस प्रकार ही चलते हैं। दुःख के उपरान्त सुख, विरह के अनन्तर मिलन, रुदन के पश्चात् हास्य—यही जीवन-क्रम है और अब कला तथा सौन्दर्य के उपभोग का उपयुक्त समय भी है।

ताराचन्द्र—यही सुयोग देख मैं अपनी विगत जीवन-चर्या की पुनरावृत्ति कर रहा हूं, आज से ही आनन्दमय जीवन का श्रीगणेश किया जाये। जाओ, मेरी पूर्वनियुक्त गायिकाओं को ले आओ।

(नैनूराम का गमन और क्षणोपरान्त ६ गायिकाओं के साथ प्रवेश)

ताराचन्द्र—(गायिकाओं से) एक युग के उपरान्त इस संगीत-गोष्ठी

का आरम्भ हो रहा है, पर आज केवल एक गीत सुन कर ही इसका मुहूर्त करूंगा। अतः केतकी ! तुम्हीं अपने मन का सुन्दर-सा गीत गाओ ।

(केतकी द्वारा गीतारम्भ)

तुम शरद-शुभेन्दु-ज्योति और मैं चकोरी ।

तुम स्वतन्त्र पञ्चवाण, मैं निविद्ध गोरी ॥

तुम सघन अशोक और मैं मनोज्ञ छाया ।

तुम विमुग्ध जीव और मैं विलिप्त माया ॥

तुम उरोज युक्त वक्ष, मैं निबद्ध चोली ।

तुम वसन्त-वाद्य मैं मनोज-गीति होली ॥

तुम वधू-ललाट, मैं सुहागविन्दु रोरी !

तुम शरद-शुभेन्दु-ज्योति और मैं चकोरी ॥

तुम प्रभात के विलास, मैं सराग ऊषा ।

तुम अनूप रूप, मैं नवीन भव्य भूषा ॥

तुम समर-उदास पार्थ, मैं पुनीत गीता ।

तुम विजय प्रसन्न राम, मैं विमुग्ध सीता ॥

तुम प्रसुप्ति शील वत्स, मैं सुगेय लोरी ।

तुम शरद शुभेन्दु ज्योति और मैं चकोरी ॥

ताराचन्द्र—(गीत की समाप्ति पर गायिकाओं से) अब आप सब जा सकती हैं । (गायिकाओं का गमन) नैनूराम ! मुझे इस गीत में पूर्ववत् आनन्द नहीं आया, यौवन के साथ स्वर-साधुर्य और चापल्य दोनों ढल चुके हैं ।

भामाशाह

नैनूराम—स्वामिन् ! यह स्वाभाविक है, षोड़शी गायिकाओं की समानता प्रौढ़ाएं नहीं कर सकतीं ।

ताराचन्द्र —पर मेरी गान-मण्डली किसी ऐसी सुन्दरी के अभाव में निष्प्राण-सी प्रतीत होती है, यदि कहीं कोई युवती दृष्टि में हो तो सूचित करो ।

नैनूराम—सुन्दरियों में यहां कीतू की समानता की एक भी नहीं, यद्यपि उसका जन्म एक साधारण कुल में हुआ है । पर उस-सा सौन्दर्य राजाओं के अन्तःपुर में भी दुर्लभ है ।

ताराचन्द्र—यदि वह ऐसे सौन्दर्यकी अधिकारिणी है, तो मैं अवश्य उसे अपने यहां लाऊंगा । नैनूराम ! क्या तुम मुझे उसका कोई चित्र आदि दिखा सकते हो ?

नैनूराम—अवश्य, एक दिन वह अकस्मात् ही मेरे नेत्रों के सामने पड़ गयी, मैं उसे देखते ही विस्मय के सागर में मग्न हो गया । गृह पहुँचने पर भी जब उसे नहीं भुला सका, तो उसका एक चित्र भी मैंने बना डाला; जो अभी मेरे पास ही है ।

ताराचन्द्र —दिखाओ, कैसा है ?

नैनूराम—(एक चित्र निकाल कर ताराचन्द्र की ओर बढ़ाते हुए) देखिये, मेरा कथन सत्य है या नहीं ?

ताराचन्द्र—वास्तव में तुमने इसके सौन्दर्य के विषय में जो कुछ भी कहा है, वह अक्षरशः सत्य है । अब इस सौन्दर्य की प्रतिमा को पाये बिना मुझे शांति नहीं मिल सकती ।

नैनूराम—इतने आतुर मत होइये, मैं आपकी अभिलाषा पूर्ण करने के लिये प्रत्येक यत्न करूंगा ।

ताराचन्द्र—साम, दाम, दण्ड, भेद ... जिस उपाय से बने उसे मेरे गृह की शोभा बना दो ।

नैनूराम—उस पर अधिकार पाना इतना दुष्कर नहीं, साधारण गृह में उसका जन्म हुआ है । सुन्दर वस्त्रों और बहुमूल्य आभरणोंका प्रलोभन ही उसे खींच लायेगा ।

ताराचन्द्र—जाने क्यों मैं उसे पाने को व्यग्र हूँ ? तुम कल संध्या में ही उसे मेरे सामने उपस्थित कर दो । इसमें तुम्हें जितने भी धन की आवश्यकता पड़े, निस्संकोच व्यय करो हमें तो सुन्दरी चाहिये ।

नैनूराम—आप निश्चिन्त रहें, ऐसी भोली युवतियों को फूसलाना तो मेरे बांये हाथ का खेल है ।

ताराचन्द्र—अच्छा, ठीक है । अब रात्रि अधिक हो रही है, मैं शयन करूंगा । तुम कल प्रभात से ही मेरे मनोरथ की सिद्धि में जुट जाना ।

नैनूराम—ऐसा ही होगा । (गमन)

पटाक्षेप



दृश्य २

स्थान—उदयपुर ।

समय—संध्या ।

(अपने एक तरुण मित्र के साथ संध्याटन करते हुए अमरसिंह)

अमरसिंह—मित्रवर ! जाने किस दुर्भाग्य से मैंने महाराणा को पिता के रूप में पाया है । उन्हें राग-रंग से ही अरुचि है, भोग-बिलाससे तो वे दूर भागते हैं । यहाँ तक कि उनके सामने मुझे भी सदा अपनी इच्छाओं पर नियन्त्रण रखना पड़ता है । क्या करूँ ?

मित्र—कुमार ! इसमें हानि ही क्या है ? आत्म-संयम ही सफलता का स्वर्ण सोपान है ।

अमरसिंह—मित्र ! आत्म-संयम का भी समय होता है, वनों में रहते समय आत्म-संयम उपयुक्त था । पर अब राजभवनोँके प्राप्त हो जाने पर उसकी आवश्यकता नहीं रह गयी ।

मित्र—ऐसा मत सोचिये कुमार ! आत्म-संयम सदा आवश्यक है । पर यह तो कहिये कि आज आपको महाराणाकी प्रकृति से इतना असंतोष क्यों हो रहा है ?

अमरसिंह—मेरा असंतोष आज का ही नहीं । जबसे मुझमें सोचने और समझनेकी सामर्थ्य हुई, तभीसे उनकी संयम-वृत्ति मुझे खलती रही है ।

मित्र—यह मुझे ज्ञात है । फिर भी आज की किसी घटना ने ही आपको इतना चंचल किया होगा ?

अमरसिंह—हाँ, उसे घटना कहा जा सकता है। तुम मेरे अन्तरंग मित्र हो और अन्तरंग मित्र से कुछ भी गोपनीय नहीं होता। लो, सुनो। मन्त्री भामाशाह का जो सहोदर सादड़ी में रहता है, उसके यहां कीतू नामकी एक सुन्दरी है। जबसे मैंने उसकी छवि की प्रशंसा सुनी है, तभी से उसे अपनी प्रेमिका बनाने की लालसा बलवती हो रही है। पर दाजीराज के भय से उसे साकार नहीं कर सकता।

मित्र—कुमार ! एक आदर्श महाराणा के पुत्र होकर तुम्हें ऐसी साधारण स्त्रियों पर मुग्ध नहीं होना चाहिये।

अमरसिंह—क्या करूं ? जब से उसके रूप का अतिशय मैंने सुना है, तभी से मेरा हृदय मेरे वश में नहीं है। वह उसे पाने के लिये मीनवत् छटपटा रहा है।

मित्र—इतना अधीर होने की आवश्यकता नहीं, धैर्य से असम्भव भी सम्भव हो जाता है। अतः धैर्य का अवलम्बन ही श्रेयस्कर है।

अमरसिंह—पंचवाण के प्रहार से जर्जर मेरे हृदय में धैर्य का भार चहन करने की क्षमता नहीं।

मित्र—युवराज ! आज तुम बहक गये हो। पर मान लो यदि तुम उसे अपनी प्रेमिका बनाने में असफल रहे तो क्या होगा ?

अमरसिंह—यदि मैं उसे अपनी प्रेमिका नहीं बना सका तो यम-राजकी प्रेमिका अवश्य बना दूंगा। पर वैश्य ताराचन्द्र मेरी अभीष्ट वस्तु का उपयोग करे, और मैं क्षत्रिय पुत्र होकर इसे जड़वत् देखूं, यह मुझसे न हो सकेगा।

मित्र—कुमार ! आज अविवेकने तुम पर अधिकार जमा लिया है, अतः तुम्हें सम्मति न देना ही उचित है।

भामाशाह

अमरसिंह—नहीं, ऐसा नहीं। तुम अपनी सम्मति निस्संकोच दो, यदि उचित प्रतीत हुई तो अवश्य मानूंगा।

मित्र—यदि मानने को तत्पर हो, तो प्रथम ताराचन्द्र से उस सुन्दरी की याचना करो। यदि वह दे दे तो ठीक, अन्यथा जैसा तुम समझो वैसा करना।

अमरसिंह—मैं तुम्हें वचन दे चुका हूं, अतः यह प्रयत्न अवश्य करूंगा। पर आशा नहीं कि ताराचन्द्र इतनी सरलता से वह सुन्दरी मुझे दे देगा।

मित्र—आशा भले न हो, पर प्रयत्न करना कर्त्तव्य है।

अमरसिंह—यदि याचना से ताराचन्द्र ने कीतू मुझे न दी तो मैं अवश्य ही उसे बलात् पकड़ मगवाऊंगा और अपनी प्रेमिका बनने के लिये बाध्य करूंगा। मेरा अनुरोध ठुकरानेके दूसरे ही क्षण उसका शव पृथ्वी पर पड़ा दिखेगा।

मित्र—इतना कठोर संकल्प मत कीजिये, इसे कुछ कोमल बनाइये।

अमरसिंह—नहीं, अब इस निश्चय में कोई संशोधन संभव नहीं। मित्र ! क्षमा करना, मैं अब तुमसे विदा लेना चाहता हूं। कारण मुझे भय है कि कहीं तुम्हारी संगति मेरे संकल्पकी दृढ़ता को शिथिल न कर दे।

मित्र—जैसी तुम्हारी इच्छा।

(अमरसिंह का गमन)

पटाक्षेप

दृश्य ३

स्थान—भामाशाह का भवन ।

(चिन्तित मुद्रा में भामाशाह, क्षणोपरांत मनोरमा का प्रवेश)

मनोरमा—नाथ ! आज आप चिन्तित से दिख रहे हैं ?

भामाशाह—प्रिये ! चिन्ता संसारी जीवों की जीवन संगिनी है । यह जन्मसे मरण तक पतिव्रता पत्नी-सी साथ रहती है । केवल मुक्त जीवोंसे सम्बन्ध स्थापित करने में असफल होती है।

मनोरमा—(मध्य में ही) मैं आपकी यह सब दार्शनिक चर्चा नहीं सुनना चाहती । मुझे आपकी चिन्ता का कारण मात्र सुनना है ।

भामाशाह—सुनो, तुम्हें ज्ञात है कि ताराचन्द्र की भोगवृत्ति है, उसने कीतू नामकी एक सुन्दरी अपने यहां रख छोड़ी है । युवराज अमरसिंह के याचना करने पर भी उसे देना अस्वीकार कर दिया है । इससे युवराज की कोपाग्नि बढ़ गयी है और उन्होंने कीतू को पकड़ लाने के लिये सेवक को सादड़ी भेजे हैं ।

मनोरमा—वास्तव में यह चिन्ता का विषय है । युवराज की इस अनीति का जाने क्या परिणाम निकले ? कहीं देवर जी कोई नयी आपत्ति शिर पर न बुला लें ।

भामाशाह—नहीं, आपत्ति विशेष नहीं आयेगी । मैंने शांत रहने के लिये ताराचन्द्र का पत्र लिख दिया है । वह कोई उपद्रव खड़ा न करेगा ।

मनोरमा—सम्भव है देवर जी शांति अपनाये रहें, पर युवराज की कोपाग्नि किसी न किसी के नाश का कारण बनेगी ही ।

भामाशाह

भामाशाह—यही मेरी चिन्ता का कारण है, युवराज की उद्धतता और अविवेकता के अनेक उदाहरण मैंने देखे हैं। कहीं यह अविवेक भी कुछ प्राणियों के प्राण न ले बैठे ?

मनोरमा—नाथ ! मैं एक बात यह जानना चाहती हूँ कि कीतू युवराज की प्रेमिका बनना चाहती है या नहीं ?

भामाशाह—नहीं, कीतू भी ताराचन्द्र पर अनुरक्त है, निश्चय ही वह युवराज का प्रेम-प्रस्ताव ठुकरा देगी।

मनोरमा—अब अवश्य युवराज कुछ अनर्थ खड़ा करेंगे। क्या आप महाराणा से कह कर यह अनर्थ नहीं रोक सकते ?

भामाशाह—प्रिये ! मैं इस प्रसंग को महाराणा तक नहीं पहुंचाना चाहता। सम्भव है उनका न्याय युवराजके पथ में अहितकर हो और मेवाड़ का भावी उत्तराधिकारी कुछ और ठान बैठे।

मनोरमा—यह अनुमान दूरदर्शितापूर्ण है। अब नियतिके ही न्याय को स्वीकार करना होगा।

भामाशाह—हस्त के कंगण को देखने के लिये दर्पण की आवश्यकता नहीं, शीघ्र ही परिणाम समक्ष आ जायेगा। अब यह प्रसंग समाप्त किया जाये।

मनोरमा—जैसी आपकी आज्ञा।

पटाक्षेप



दृश्य ४

स्थान—उदयपुर का एक उद्यान

(अमरसिंह के पीछे कीतू और उसके पीछे ताराचन्द्र के सेवक नैनूराम का प्रवेश)

अमरसिंह—नैनूराम ! तुम यहीं खड़े रहो । मैं उस वृक्ष के नीचे कीतू से एकान्त में कुछ वार्तालाप करूंगा ।

(नैनूराम का स्थगन; अमरसिंह और कीतूका आगे गमन)

अमरसिंह—(एक वृक्ष के नीचे रुक कर) हे अनिन्द्य सुन्दरी ! तुम्हें ज्ञात है कि मेरा मन-मधुप तुम्हारे छवि-मकरन्द का पान करने का निश्चय कर चुका है ?

कीतू—ज्ञात है युवराज ! पर प्रत्येक निश्चय सफल हो, ऐसा कोई नियम नहीं है ।

अमरसिंह—नियम न हो, पर अमरसिंह का निश्चय असफलता का वरण नहीं करता । तुम्हें अपने सौन्दर्य-भोग का अधिकार मुझे देना होगा ।

कीतू—यह सर्वथा असम्भव है, नारी हृदय से केवल एक को ही चाह सकती है । मेरे मन-मन्दिर में अब अन्य आराध्य की प्रतिष्ठा करने को स्थान नहीं ।

अमरसिंह—कीतू ! इतनी कठोरता अपनाने के पूर्व यह निश्चित समझो कि तुम्हारी इस उपेक्षा का परिणाम भीषण हो सकता है ।

भामाशाह

कीतू—समझती हूं, वह भीषण परिणाम मृत्यु से अधिक नहीं होगा।

अमरसिंह—क्या वह ताराचन्द्र तुम्हें जीवनसे भी अधिक प्रिय है ?

कीतू—अवश्य ! आदर्शवादी नारी जिसे अपना हृदय दे देती है, उसके साथ विश्वासघात नहीं करती।

अमरसिंह—एक साधारण कुल में जन्म लेकर आदर्शवादी बनना बुद्धिमत्ता नहीं। मेरा प्रेम-प्रस्ताव स्वीकार कर राज-वध बनने में ही तुम्हारी बुद्धिमानी है।

कीतू—राज-वधू बनाने का प्रलोभन मुझे विचलित नहीं कर सकता। निश्चय की रक्षा में यम-वधू बनकर भी मुझे सन्तोष होगा।

अमरसिंह—तुम-सी मूर्खा अन्य नारी मैंने नहीं देखी, जो मेरे प्रेम-प्रस्ताव को ठुकराने का साहस कर सके। तुम्हें एक घड़ी का समय और देता हूं। इसमें अपने हितको भली प्रकार विचार लो।

कीतू—मुझे कुछ नहीं विचारना है, बिना विचारे मैं कोई निश्चय नहीं करती और निश्चय कर चुकने पर उस पर विचार नहीं करती।

अमरसिंह—ज्ञात होता है तुम्हें मरने की इच्छा हो रही है। यदि तुम यही चाहती हो, तो मैं इसका भी प्रबन्ध कर चुका हूं।

कीतू—यह जानकर मुझे प्रसन्नता है। तुम्हारे प्रेमदान से मृत्युदान मुझे प्रिय है। (बक्ष से अञ्चल हटाते हुये) लो, अपना मनोरथ पूर्ण करो।

(अमरसिंह द्वारा करतल ध्वनि, बृक्षकी ओर से नग्न कृपाण लिये एक क्रूराकृति सेवक का प्रवेश, स्वामी का संकेत पा कीतू पर प्रहार, एक चीख मारते हुये कीतू का भू-पतन, चीख सुनकर 'कीतू' 'कीतू' चिल्लाते हुये नैनूराम का प्रवेश)

अमरसिंह—(नैनूराम को देख कर) तुम्हारी कीतू उत्तर देने के लिये अब इस लोक में नहीं । यदि तुम्हें भी उसके पथ का अनुसरण नहीं करना है, तो शीघ्र ही भाग जाओ । (कीतू का रक्त-सिक्त एक वस्त्र चिह्न स्वरूप उठा नैनूराम का शीघ्रता से पलायन)

पटाक्षेप

दृश्य ५

स्थान --सादड़ी का वहिर्भाग

(ताराचन्द्र की चार पत्नियां, षट् गायिकाएँ, नैनूराम, उसकी पत्नी, ताराचन्द्र की फूफी, उसका पति, एक यवन औलिया, ताराचन्द्र की घोड़ी और ताराचन्द्र आदि का क्रमशः आगमन और एक विशाल चिता-सृजन का उपक्रम)

नैनूराम—(चिता कर काष्ठ रखते हुये ताराचन्द्र से) स्वामिन् ! आपके अग्रज भामाशाह तथा आपने मेवाड़-उद्धारके लिये इतना महान् त्याग किया और मेवाड़ के भावी उत्तराधिकारी अमरसिंह ने उसका यह उपहार दिया ।

ताराचन्द्र—नैनूराम ! अमरसिंह की यह कृतघ्नता उन्हीं के लिये घातक सिद्ध होगी । राज लक्ष्मी कभी उनसे सन्तुष्ट नहीं रह सकती । यह अनीति मेवाड़-राज्य के पतन की भूमिका बन कर रहेगी ।

केतकी—आपकी भविष्यवाणी सत्य होकर रहेगी, यदि अन्य कोई होता तो इस अनीतिका प्रतिशोध लिये बिना न रहता ।

ताराचन्द्र—हमने आज तक जिसे अपना स्वामी माना है, उससे प्रतिशोध लेकर हम अपनी स्वामिभक्ति को कलंकित नहीं करेंगे ।

शामाशाह

नैनूराम—पर हृदय-भेदी इस आघात की वेदना हम विश्व को अवश्य दिखा जायेंगे ।

ताराचन्द्र—इसी के लिये हम सब प्राणों की आहुति देने जा रहे हैं । हमारी यह आहुति अपने अपमान का महानतम प्रतिशोध होगी ।

केतकी—क्या आप भी हम सबके साथ अपने आपको चिता की भेंट कर देंगे ?

ताराचन्द्र—अवश्य ! इन २० प्राणियों के मरण का हेतु बन कर मैं कैसे जीवित रह सकता हूँ ?

नैनूराम—आपका कथन अनुचित नहीं; पर आपका जीवित रहना अत्यन्त आवश्यक है ।

ताराचन्द्र—क्यों ?

नैनूराम - इसलिये, कि यदि हम सब चितामें भस्म हो गये तो हमारी इस आहुतिका स्मारक कौन खड़ा करेगा ? और स्मारक के अभाव में हमारे उत्सर्ग की कहानी काल के गर्त में विलीन हो जायेगी ।

ताराचन्द्र—तुम्हारी सम्मति अनुचित नहीं, पर उत्सर्ग स्वयं अपना स्मारक है । इसकी स्मृति हमें नहीं, जनता को रखना है । यदि वह इस आहुति की स्मृति को सुरक्षित रखना चाहेगी तो, एक ऐसा स्मारक बनायेगी जो हम सब के प्राण विसर्जन की मौन कहानी सुनाता रहेगा ।

नैनूराम—(चिता की ओर देख कर) क्या अभी और काष्ठ संचित किया जाये ?

ताराचन्द्र—अवश्य । २१ प्राणियों की काया भस्म करने के लिये अभी यह पर्याप्त नहीं ।

नैनूराम—(कुल्ल और काष्ठ रख कर) लीजिये, पर्याप्त हो गया । अब अग्नि प्रज्वलित की जाये ।

ताराचन्द्र—करो ! (नैनूराम द्वारा चिता में अग्नि प्रज्वलन)

ताराचन्द्र—अग्नि देवते । युवराज की अनीति से पीड़ित हम सब तुम्हारी शरण में पहुंच रहे हैं; हमें आश्रय देने के लिये अपना अंचल फैलाओ ।

(अग्नि की लपटों में कीतू के रक्तसिक्त वस्त्र का इक्षेपण, वस्त्र अग्नि में पड़ने के साथ ही सभी प्रज्वलित चिता में कूदने को उद्यत)

पटाक्षेप



नाटक की कुछ सूक्तियाँ

अंक दृश्य

- १ १ उदारता कोई शोचनीय अवगुण नहीं, प्रशंसनीय गुण है।
- १ ५ चिर-सहवास से मोह प्रबल हो ही जाता है।
- १ ५ कर्मशील मोहकी अपेक्षा कर्तव्यको ही अधिक महत्व देते हैं।
- २ ८ हमें कायरता से घृणा करनी चाहिये, कायर से नहीं।
- ३ ४ कुटिल जन प्रत्येक कार्य किसी न किसी स्वार्थवश ही करते हैं।
- ३ ४ पावन को भी पतित बनाना पतितों का व्यसन होता है।
- ५ १ चिन्ता और निराशा उन्नति के वृक्ष को काटने वाली कुल्हाड़ियाँ हैं।
- ५ १ प्रत्येक आत्मा में अनन्त शक्ति है।
- ५ १ वीतरागी के मनोभाव गोपनीय नहीं होते।
- ५ ४ पौरुष ही दुर्भाग्य को सौभाग्य में परिवर्तित करने को समर्थ है।
- ५ ४ भाग्य और पौरुष सफलता-रूप रथ के दो चक्र हैं, भाग्य-चक्र का संचालन नियति करती है और पौरुष-चक्र का संचालन पुरुष।
- ५ ५ किसी भी परराष्ट्र के मंत्री से सतर्क रहना राजनीति है।
- ५ ५ जयेच्छू नृप की नीति और शक्ति ये दो भुजाएँ हैं।

अंक दृश्य

- ५ ५ क्षमा व्रतधारियों का गुण है, तेजस्वी राजाओं का नहीं ।
- ५ ८ प्रत्येक दुःखी के दुःख दूर करना मनुष्य का कर्त्तव्य है ।
- ६ २ रजत खण्डों पर अपना स्वाभिमान बेंचने वाले सिद्धान्त का मूल्य आँकने में असमर्थ होते हैं ।
- ६ २ मृत्यु के साथ क्रीड़ा करनेवाले वीरों का मरण कभी नहीं होता ।
- ६ २ समुज्ज्वल सिद्धांतोंके लिये इन्द्रका कोप भी घातक नहीं होता ।
- ६ ५ प्रयत्न करने से असम्भव सम्भव हो जाता है, असाध्य साध्य हो जाता है और अप्राप्य भी प्राप्य हो जाता है ।
- ७ २ आत्म-संयम ही सफलता का स्वर्ण सोपान है ।
- ७ २ अन्तरंग मित्र से कुछ भी गोपनीय नहीं होता ।
- ७ २ धैर्य से असम्भव भी सम्भव हो जाता है ।
- ७ ३ चिन्ता संसारी जीवों की जीवन-संगिनी हैं ।
- ७ ४ नारी हृदय से केवल एक को ही चाह सकती है ।
- ७ ४ आदर्शवादी नारी जिसे अपना हृदय दे देती है, उसके साथ विश्वासघात नहीं करती ।
- ७ ५ उत्सर्ग स्वयं अपना स्मारक है ।

सहायक ग्रन्थों की सूची

जैन शासन—श्री सुमेरुचंद्र जी दिवाकर बी० ए० एल० एल० बी० ।

टाँड राजस्थान— कर्नल जेम्स टाँड कृत, पं० बलदेव प्रसादजी द्वारा अनुदित ।

प्रतापी प्रताप... पं० हरिशंकर शर्मा कविरत्न ।

महाराणा प्रतापसिंह नाटक... श्री राधाकृष्ण दासजी ।

मेवाड़ नो पुनरुद्धार... श्री जगजीवन भावजी, कपासी चुड़ा (काठियावाड़) ।

राजपूताने के जैनवीर... श्री अयोध्या प्रसाद जी गोयलीय ।

वीर विनोद—

हल्दी घाटी ...श्री श्याम नारायण पाण्डेय ।

जैन साहित्यमें राजनीति... श्री पं० पन्नालालजी साहित्याचार्य आदि ।

भामाशाह का घराना... श्री अगरचंद्र जी नाहटा ।

भामाशाह विषयक जिज्ञासाओंका समाधान... श्री अगरचंद्रजी नाहटा ।

